CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयम्भू - स्तोत्रम्

(चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्)

तीर्थंकरों के चिह्न

4880

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचित

स्वयम्भू-स्तोत्रम्

(सरल हिन्दी अनुवाद)

अनुवाद लेखक

महेन्द्र जैन

सम्पादक

डॉ. वीर सागर जैन

4887

प्रकाशक

श्रीमती कमला जैन चैरिटेबल ट्रस्ट

बी-38, ग्रीन पार्क मेन, नई दिल्ली - 16

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्वितीय संस्करण - सन् 2008

मूल्य - आत्म उत्थान

प्राप्ति-स्थान

1. श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर
   एन-10, ग्रीन पार्क एक्सटेंशन, नई दिल्ली-16

2. श्रीमती कमला जैन चैरिटेबल ट्रस्ट
   वी-38, ग्रीन पार्क मेन, नई दिल्ली-16
   फोन : 26564614

3. ए. एम. इलैक्ट्रिकल्स
   1869, बिजली मार्केट,
   चाँदनी चौक, दिल्ली-110006
   फोन-23873787, मो. : 9313885098

मुद्रण :

स्ट्रोक, (मोबाइल : 98101 93000)
ए-128/1, मोहम्मदपुर मार्केट, नई दिल्ली-110 066

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मेरा निवेदन

"पीठिकाग्रे स्वयम्भूः" अर्थात् तीर्थंकर भगवान सिहांसन पर अपने समवसरण में चार अंगुल प्रमाण अधर अष्टप्रतिहार्यों सहित विराजमान हैं। मैं उनको प्रणाम करता हूँ।

स्वयंभू तीर्थंकर को कहते हैं, जो इस युग में ऋषभदेव से लेकर महावीर स्वामी पर्यन्त चौबीस तीर्थंकर हुए हैं। भूतकाल में ऐसी अनन्त चौबीसी हो चुकी हैं और भविष्य में भी होती रहेंगी।

ये सभी तीर्थंकर स्वयं का उद्धार करके अनन्त भव्य जीवों को भी सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र का उपदेश देकर अपनी दिव्य ध्वनि द्वारा परम हितकारी मार्ग दिखाते हैं। अतः परम वन्दनीय कहलाते हैं।

ऐसे तीर्थंकरों की वाणी को उनकी अनुपस्थिति में आचार्य–मुनिराज भव्यजीवों को समझाते हैं। अतः उनका भी हमारे ऊपर महान उपकार है।

इन आचार्यों की परम्परा में विक्रम की दूसरी–तीसरी शताब्दी में श्री समन्तभद्र स्वामी ऐसे महान आचार्य हुये जो बड़े परीक्षा प्रधानी थे और जिनका सम्पूर्ण आचार्य परम्परा में भी बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान माना जाता है। उन्होंने अपना परिचय काशी में विहार के अवसर पर काशी–नरेश को स्वयं इस प्रकार दिया था – मैं आचार्य हूँ, कवि हूँ, शास्त्रार्थी हूँ, पण्डित हूँ, ज्योतिषी हूँ, वैद्य हूँ, तान्त्रिक हूँ, इस सम्पूर्ण प थ्वी पर मुझे वचन सिद्धि है, अधिक क्या कहूँ, मैं सिद्ध सारस्वत हूँ।

आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने अनेक ग्रन्थों की रचना की है। जिनमें से रत्नकरण्डश्रावकाचार, आप्तमीमांसा आदि विशेष रूप से विख्यात है। व हत् स्वयम्भू–स्तोत्र भी उन्हीं में से एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें 143 श्लोकों में चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति की गयी है, परन्तु स्तुति के साथ–साथ उसमें जैनदर्शन का अनेकान्तवाद, स्याद्वाद–सप्तभंगीनय आदि का गूढ़ रहस्य एवं गम्भीर तत्वों का अम त पान कराया है। इसलिये यह स्तोत्र और भी महत्त्वपूर्ण हो गया है।

पिछले कुछ माह से मैं इस स्तुति ग्रन्थ का बारम्बार स्वाध्याय कर रहा हूँ, जिसमें मुझे श्री डॉ. वीर सागर जी जैन जो कि श्री लाल बहादुर शास्त्री

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
राष्ट्रिय संस्कृत राष्ट्रीय विद्यापीठ में जैन दर्शन विभाग के अध्यक्ष हैं, प्रकांड विद्वान हैं उनकी बड़ी सहायता मिल रही है। मैं संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ था, फिर भी डॉ. वीरसागर जी की अनुकम्पा से मुझे इस स्तोत्र को शुद्ध पढ़ना और पढ़ने के साथ उसका अर्थ भाव मस्तिष्क में समझना आया है। मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। उनके अथक परिश्रम से मैंने संस्कृत एवं प्राकृत भाषा सीखी है।

मैं इस स्वयम्भू–स्तोत्र से बहुत प्रभावित हूँ। वीतराग भगवान की स्तुति क्यों और कैसे की जाती है तथा जैन दर्शन का क्या मर्म है, यह सब इस ग्रन्थ से समझा हूँ और इसलिये अपनी टूटी फूटी भाषा में समान साधर्मियों के लिये यह सरल हिन्दी अर्थ लिखा है।

मैंने पं. पन्नालाल जी साहित्याचार्य और प्रो. उदयचन्द जी जैन वाराणसी की टीकाओं को पढ़ा है, जो कि अत्यन्त विद्वत्तापूर्ण हैं। वे सूर्य हैं और मैं तो उनके सामने जुगनू जैसा अति लघु हूँ। विद्वान समुदाय मेरे इस अनुवाद को देख कर हंसेंगे, परन्तु मैंने तो अपने पवित्र इरादे से जनसामान्य के धर्मलाभार्थ इसे प्रस्तुत कर दिया है।

मेरा निवेदन है कि आप इस स्तोत्र का पाठ करते समय आचार्य समन्तभद्र स्वामी का अभिप्राय श्लोकों के उच्चारण के साथ साथ अपने मन–मस्तिष्क में चलाते रहें तभी यथार्थ भक्ति व स्तुति उत्तम फलदायक सिद्ध होगी। जो भाई–बहिन किसी भी कारणवश पूरा स्तोत्र नहीं पढ़ पाते हैं, वे सरल हिन्दी गद्य (अनुवाद) को ही बार–बार पढ़ कर स्तुति का अतुल धर्म लाभ उठायें।

मेरे इस भावपूर्ण अनुवाद में कोई त्रुटि रह गयी हो तो मैं क्षमाप्रार्थी हूँ और आप उस त्रुटि को सुधार कर पढ़ें व मुझे भी बताने की कृपा करें।

अंत में आचार्य समन्तभद्र स्वामी के चरणों में नमोस्तु करता हुआ अपनी वाणी को विराम देता हूँ।

व्रती महेन्द्र जैन,
ग्रीन पार्क मेन,
नई दिल्ली–16

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूमिका

आचार्य समंतभद्र द्वारा रचित "स्वयम्भू स्तोत्र" जैन स्तुति–साहित्य का एक आदर्श/मानक ग्रन्थ है। स्तुति, स्तुत्य, स्तुतिकर्ता, स्तुतिफल – इन सभी स्तुतिविषयक जिज्ञासाओं के समुचित समाधान हेतु इस एक ही ग्रन्थ का अध्ययन पर्याप्त है।

अधिकांश लोग दार्शनिक ग्रन्थों को ही गूढ–गम्भीर, परंतु स्तुति–साहित्य को एकदम हल्का–फुल्का या अत्यन्त सरल–सा समझते हैं। परन्तु इस 'स्वयम्भू–स्तोत्र' को पढ़ने से पता चलता है कि वस्तु स्थिति ऐसी नहीं है। जैन–स्तुति–साहित्य को समझना भी कोई बच्चों का खेल नहीं है, उसमें भी गूढ़–गम्भीर दर्शनशास्त्र भरा हुआ होता है। यही कारण है कि इस "स्वयम्भू–स्तोत्र" के संस्कृत–टीकाकार आचार्य प्रभाचन्द्र ने इस स्तोत्र को 'निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः' अर्थात् 'जिनेन्द्र–कथित सर्व विषयों से भरा हुआ' कहा है। यथा :–

"यो निःशेषजिनोक्तधर्मविषयः श्रीगौतमाद्यैः कृतः।
सूक्तार्थैरमलैः स्तोव यमसमः स्वल्पैः प्रसन्नैः पदैः।।"

इससे स्पष्ट है कि जैन दर्शन की सम्पूर्ण वस्तु व्यवस्था (द्रव्य–गुण–पर्याय, प्रमाण–नय–विवेचन, अनेकान्त–स्याद्वाद–अहिंसा आदि सभी सिद्धांतों) को समझे बिना जैन–स्तुति–साहित्य को नहीं समझा जा सकता। यहां तक कि एक सच्चा स्तुतिकर्ता भी नहीं बना जा सकता।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अतएव इस 'स्वयम्भू–स्तोत्र' को अत्यधिक एकाग्रतापूर्वक, पूरा मन लगाकर पढ़ना–समझना बहुत आवश्यक है। पाठकों को आश्चर्य होगा कि यद्यपि यह स्तुति ग्रन्थ है, परन्तु इसमें न तो कहीं कुछ रोने–गिड़गिड़ाने जैसा कुछ है, न कोई याचना–प्रार्थना है, न कोई निवेदन–प्रतिवेदन है, न कोई रूठना–मनाना है, न कोई अभिशाप आशीर्वाद–वरदान की बात है और न ही कोई सख्य–दास्यादि विविध भावों की उपासना है। और तो और, जिन 24 तीर्थंकरों की इसमें स्तुति की गई है, उनके जीवनव त्त की भी इसमें कोई खास जानकारी नहीं है। उनकी जन्मतिथि, जन्मभूमि, चिह्न, वर्ण, गणधर, संहनन–संस्थान, ग ह–प्रसंग आदि कुछ भी नहीं है। मात्र तत्त्वज्ञान ही तत्त्वज्ञान है और मात्र उसी के द्वारा भगवान की अद्‌भुत स्तुति होती चली गई है। अभिप्राय यही है कि बस, एक ही रास्ता है, तत्त्व (वस्तुस्वरूप) को समझो और तदनुरूप आचरण करो, सुखी हो जाओगे। आज तक सब इसी उपाय से सुखी हुये हैं और आगे भी जो सुखी होंगे वे सब एक इसी उपाय से होंगे। अन्य कोई उपाय नहीं है। संभव ही नहीं है। रोने–गिड़गिड़ाने से कुछ होने वाला नहीं है। कोई किसी को सुख–शांति भेंट में नहीं दे सकता। स्वयं पुरुषार्थ करो।

धर्मानुरागी श्रीमान् महेन्द्र कुमार जी जैन अत्यन्त भद्रपरिणामी हैं, बहुत अधिक संयम पालन करते हैं और सप्तम प्रतिमा के भी धारक हैं। इस 84 वर्ष की उम्र में भी वे नियमित रूप से अपनी सभी जिनेन्द्र–पूजन, स्वाध्याय, सामायिक आदि क्रियाओं को अत्यन्त उत्साहपूर्वक करते हैं तथा निरंतर मुनि होकर समाधिमरण की भावना भाते रहते हैं जो हम सबको भी अत्यन्त प्रेरणादायक है। आपमें सीखने की अद्‌भुत ललक है। पिछले तीन–चार वर्षों में ही आपने प्राकृत–संस्कृत भाषाओं को सीखने का भी अच्छा अभ्यास किया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
'स्वयंभू–स्तोत्र' को आप विगत आठ–दस माह से नित्यप्रति पढ़ते हैं और इसीलिए आपने अपने स्वयं के समझने हेतु इसका हिन्दी–अर्थ अपनी भाषा में लिख लिया। वही अब सर्वसाधारण के लाभार्थ इस पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो रहा है। सभी का कल्याण हो – यही भावना है।

-वीर सागर जैन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमत्समन्तभद्राचार्य विरचितम्

स्वयम्भू-स्तोत्रम्

(चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्)

(1) श्रीवृषभजिनस्तवनम्

स्वयम्भुवा भूत-हितेन भू-तले,
समञ्जस-ज्ञान-विभूति-चक्षुषा ।
विराजितं येन विधुन्वता तमः,
क्षपाकरेणेव गुणोत्करैः करैः ॥ 1 ॥

प्रजापतिर्यः प्रथमं जिजीविषूः,
शशास कृष्यादिषु कर्मसु प्रजाः ।
प्रबुद्ध-तत्त्वः पुनरद्भुतोदयो,
ममत्वतो निर्विविदे विदांवरः ॥ 2 ॥

विहाय यः सागर-वारि-वाससं,
वधूमिवेमां वसुधा वधूं सतीम् ।
मुमुक्षुरिक्ष्वाकु-कुलादिरात्मवान्,
प्रभुः प्रवव्राज सहिष्णुरच्युतः ॥ 3 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमत्समन्तभद्राचार्यविरचितम्

4887

स्वयम्भू-स्तोत्रम्

(चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्)

(1) श्रीव षभजिनस्तवनम्

भगवान वृ षभदेव स्वयम्भू थे, प्राणी मात्र के हितकारक थे, निर्मल ज्ञानरूपी चक्षुओं से सहित थे और अनेक गुणों के भंडार थे। जिस प्रकार चन्द्रमा रात्रि के अन्धकार को नष्ट करता है, उसी प्रकार आपने भी प्रजा के अज्ञान–अन्धकार को दूर किया था।।1।।

जिन्होंने सम्पूर्ण लोक की समस्त प्रजा को युग के प्रारम्भ में असि, मसि, कृषि, विद्या, शिल्प और वाणिज्य इन छः कार्यों का ज्ञान–उपदेश दिया और आदिब्रह्मा कहलाये। बाद में हेय (छोड़ने योग्य) तथा उपादेय (ग्रहण करने योग्य) तत्त्वों का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त कर वे संसार से विरक्त हो गये, और केवल ज्ञानी होकर ज्ञानियों में श्रेष्ठ बन गये।।2।।

भगवान वृ षभदेव कर्मभूमि के प्रथम राजा थे। इससे पहले कर्मभूमि में भोगभूमि की व्यवस्था थी। भगवान वृ षभदेव ने दूर समुद्रपर्यन्त राज्य को त्याग दिया और मुमुक्षु बनकर तथा जितेन्द्रिय होकर सहिष्णु एवं अचल निर्ग्रन्थ दीक्षा धारण कर ली।।3।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्व-दोष-मूलं स्व-समाधि-तेजसा,
निनाय यो निर्दय-भस्मसात्क्रियाम् ।
थिनेड जगाद तत्त्वं जगतेऽञ्जसा,
बभूव च ब्रह्मपदामृतेश्वरः ॥ 4 ॥

स विश्व-चक्षुर्वृषभोर्चितः सतां,
समग्र-विद्याऽऽत्म-वपुर्निरञ्जनः ।
पुनातु चेतो मम नाभिनन्दनो,
जिनो जितक्षुल्लक-वादि-शासनः ॥ 5 ॥

इति वृषभ-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान वृषभदेव ने समस्त दोषों के मूल कारण चार घातिया कर्मों को परम शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा निर्दयता पूर्वक भस्म कर दिया। उन्होंने तत्त्वज्ञान के अभिलाषी प्राणी समूह को यथार्थ तत्त्वों का स्वरूप बताया और स्वयं मोक्ष के अविनाशी अनन्त सुख के स्वामी हुए।।4।।

जो विश्वचक्षु हैं, अर्थात् जिनका केवल ज्ञानरूपी नेत्र समस्त लोक के पदार्थों को एकसाथ एक समय में जानने वाला है, अर्चित अर्थात् पूज्य हैं, निरंजन है, कर्मकलंक–रहित है। चौदहवें कुलकर नाभिराज के पुत्र हैं तथा जिनका शासन अन्य मतावलम्बियों के द्वारा नहीं जीता जा सका, ऐसे भगवान मुझे पवित्र करें, विकारी भावों से रहित करें और निर्मल बनावें।।5।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2) भगवदजिताजिनस्तवनम्

यस्य प्रभावात् त्रिदिव-च्युतस्य,
क्रीडास्वपि क्षीव-मुखारविन्दः ।
अजेय-शक्तिर्भुवि बन्धु-वर्ग
चकार नामाऽजित इत्यबन्ध्यम् ॥ 6 ॥

अद्यापि यस्याऽजितशासनस्य,
सतां प्रणेतुः प्रतिमंगलार्थम् ।
प्रगृह्यते नाम परं पवित्रं,
स्व-सिद्धि-कामेन जनेन लोके ॥ 7 ॥

यः प्रादुरासीत्प्रभु-शक्ति-भूम्ना,
भव्याशयालीन-कलंक-शान्त्यै ।
महामुनिर्मुक्त-घनोपदेहो,
यथारविन्दाभ्युदयाय भास्वान् ॥ 8 ॥

येन प्रणीतं पृथु-धर्म-तीर्थं,
ज्येष्ठं जनाः प्राप्य जयन्ति दुःखम् ।
गाङ्गं ह्रदं चन्दन-पङ्क-शीतं,
गजप्रवेका इव घर्म-तप्ताः ॥ 9 ॥

स ब्रह्म-निष्ठः, सम-मित्र-शत्रुः
विद्या-विनिर्वान्त-कषाय-दोषः ।
लब्धात्मलक्ष्मीरजितोऽजितात्मा,
जिनश्रियं मे भगवान् विधत्ताम् ॥ 10 ॥

इत्यजित-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(2) श्रीअजितजिनस्तवनम्

विजयनामा अनुत्तर विमान से च्युत होकर अयोध्या के राजा जितशत्रु की रानी विजयसेना के पुत्र हुए थे। उनका अजित नाम सार्थक था। कुटम्बीजनों को शत्रुओं से सदा विजय ही प्राप्त होती रही। बाल क्रीड़ाओं में भी वे कभी किसी से पराजित नहीं हुए। उनका मुख विजय से सदा खिला–खिला रहता था।।6।।

अनेकान्त रूप शासन एकान्तवादियों द्वारा अविजित था। आज भी अपने मनोरथ की सिद्धि के लिये, प्रत्येक मंगल कार्य करने से पहिले लोग आपका नाम सादर ग्रहण करते हैं अर्थात् लेते हैं।।7।।

भगवान अजितनाथ गणधरादि देवों के प्रधान थे, प्रत्यक्ष–ज्ञान से युक्त होकर वे महामुनि कहलाए। जैसे सूर्य मेघों को छेद कर अपने तेज से कमलवन को आह्लादित करता है, उसी प्रकार आपने घातिया कर्मों को छेद कर अपनी दिव्य ध्वनि से भव्यजनों के अज्ञान–अन्धकार को दूर किया।।8।।

भगवान अजितनाथ ने अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा जिस परमार्थ तीर्थ का प्रतिपादन कर धर्म का प्रकाश किया था वह द्वादशांग् में अत्यन्त महान है, श्रेष्ठ है। उसकी शरण पाकर भव्यजीव चतुर्गति भ्रमण के क्लेशों से उसी तरह छूट जाते हैं, जैसे घाम में पीड़ित हाथी गंगा नदी के शीतल जल में नहाकर गर्मी के दुःख से छूट जाते हैं।।9।।

जिन्होंने परमागम के ज्ञान और उसमें बताये हुए मोक्ष मार्ग के अनुष्ठान रूप कषायों का समूल नष्ट कर दिया है, जो शुद्ध आत्मस्वरूप में स्थित हैं, शत्रु–मित्र को समान समझते हैं, आत्मा की ज्ञान रूपी लक्ष्मी को प्राप्त कर चुके हैं, ज़िन्होंने अपने आप को जीत लिया है, वे अजितनाथ तीर्थंकर मुझे अनन्त–चतुष्टय रूप लक्ष्मी को प्रदान करें।।10।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3) श्रीशम्भवजिनस्तवनम्

त्वं शम्भवः संभव-तर्ष-रोगैः,
संतप्यमानस्य जनस्य लोके ।
आसीरिहाकस्मिक एव वैद्यो,
वैद्यो यथाऽनाथ रुजां प्रशान्त्यै ॥ 11 ॥

अनित्यमत्राणमहं-क्रियाभिः,
प्रसक्त-मिथ्याऽध्यवसाय-दोषम् ।
इदं जगज्जन्म-जराऽन्तकाऽऽर्तं,
निरञ्जनां शान्तिमजीगमस्त्वम् ॥ 12 ॥

शतह्रदोन्मेष-चलं हि सौख्यं,
तृष्णामयाऽप्याऽऽयन-मात्र-हेतुः ।
तृष्णाऽभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं,
तापस्तदाऽऽयासयतीत्यवादीः ॥ 13 ॥

बन्धश्च मोक्षश्च तयोश्च हेतू,
बद्धश्च मुक्तश्च फलं च मुक्तेः ।
स्याद्वादिनो नाथ! तवैव युक्तं,
नैकान्त-दृष्टे त्वमतोऽसि शास्ता ॥ 14 ॥

शक्रोऽप्यशक्त तव पुण्यकीर्तेः,
स्तुत्यां प्रवृत्तः किमु मादृशोऽज्ञः ।
तथापि भक्त्या स्तुत-पाद-पद्मो,
ममार्य! देयाः शिवतातिमुच्चैः ॥ 15 ॥

इति श्रीशम्भव-जिन स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(3) श्रीशम्भवजिनस्तवनम्

यह संसारी प्राणी भोगोपभोगों की तृष्णा से बहुत दुःखी है, उसके सर्व दुःख दूर करने के लिये आप निःस्वार्थ वैद्य हैं। जिस प्रकार अनाथ संसारी प्राणियों के रोगों को दूर करने के लिये कोई निःस्पृह वैद्य प्रगट होता है, उसी प्रकार आप प्रगट हुये।।11।।

यह संसार विनाशिक है, अशरण है। मिथ्या बुद्धि के कारण यह प्राणी सब पदार्थों का अपने को कर्ता–धर्ता माने हुए है और इसी मान्यता से पीड़ित है। आपने इस जन्म मरण–जरा रोग से दुखी संसार को सच्ची शान्ति प्राप्त करायी।।12।।

यह इन्द्रियजन्य सुख बिजली की कौंध के समान विनाशी व क्षणभंगुर है। तृष्णारूपी रोगों को बढ़ाने वाला है। तृष्णा की वृद्धि निरन्तर आकुलता को बढ़ाती है और प्राणियों को संताप उत्पन्न करती है, अतः वे विषय–व्यापार आदि कार्यों में संलग्न रह कर दुःखी होते हैं। इस दुःख का सच्चा निदान शंभवनाथ भगवान ने संसारी प्राणियों को बताया।।13।।

कर्मों का आत्मा के साथ एकक्षेत्र वगाह होना बंध है और समस्त कर्मों का क्षय होना मोक्ष है। मुक्त आत्मा और मुक्ति का फल अनेकान्त रूप से आपके मत में ही निरूपण किया गया है। अन्यमतावलम्बी – एकान्त दृष्टि वालों के मत में निरूपण नहीं हो सका। इसलिये आप ही सच्चे तत्त्वोपदेष्टा हैं।।14।।

शक्ति का पुंज अवधिज्ञानी इन्द्र आपकी स्तुति करने में असमर्थ है। मैं अल्पज्ञानी समन्तभद्र कैसे समर्थ हो सकता हूँ? फिर भी तीव्र भक्तिवश मैं आपके चरण–युगल की स्तुति कर रहा हूँ। मुझे सांसारिक सुखों की चाह नहीं है, मुझे तो मोक्ष का यथार्थ सुख ही चाहिए।।15।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4) अभिनन्दनजिनस्तवनम्

गुणाभिनन्दादभिनन्दनो भवान्,
दयावधूं क्षान्ति-सखीमशिश्रियत् ।
समाधि-तन्त्रस्तदुपोपपत्तये,
द्वयेन नैर्ग्रन्थ्य गुणेनऽचाऽऽयुजत् ॥ 16 ॥

अचेतने तत्कृत-बन्धजेऽपि च,
ममेदमित्याऽभिनिवेशिक-ग्रहात् ।
प्रभङ्गुरे स्थावर-निश्चयेन च,
क्षतं जगत्तत्त्वमजिग्रहद् भवान् ॥ 17 ॥

क्षुधादि-दुःख-प्रतिकारतः स्थितिः
न चेन्द्रियार्थ-प्रभवाऽल्प-सौख्यतः ।
ततो गुणो नास्ति च देह-देहिनो-
रितीदमित्थं भगवान् व्यजिज्ञपत् ॥ 18 ॥

जनोऽतिलोलोऽप्यनुबन्धदोषतो,
भयादकार्येष्विह न प्रवर्तते ।
इहाप्यमुत्राप्यनुबन्ध-दोष-वित्,
कथं सुखे संसजतीति चाऽब्रवीत् ॥ 19 ॥

स चानुबन्धोऽस्य जनस्य तापकृत्,
तृषोऽभिवृद्धिः सुखतो न च स्थितिः ।
इति प्रभो लोकहितं यतो मतं,
ततो भवानेव गतिः सतां मतः ॥ 20 ॥

इत्यभिनन्दन-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(4) श्रीअभिनन्दनजिनस्तवनम्

भगवान अभिनन्दननाथ के जन्म होने पर समस्त प्राणियों के ज्ञान आदि गुण तथा सम्पदायें व द्धि को प्राप्त हुयीं, इसलिये आपका अभिनन्दन नाम सार्थक था। आप दया–क्षमा को लक्ष्य बनाकर, अन्तरंग और बहिरंग के भेद से सर्व परिग्रह का त्याग कर पूर्ण निर्ग्रन्थता को प्राप्त हुए।।16।।

अचेतन शरीर में और इससे सम्बन्धित सभी पदार्थों में ममबुद्धि कर के "ये मेरे हैं, मैं इनका स्वामी था, और आगे भी रहूँगा" ऐसी मिथ्यारूपी पिशाच के कारण जो दुःख उठा रहा है उस जीव को हे भगवन्! आपने जीवादि पदार्थों का यथार्थ स्वरूप समझाया है।।17।।

इस नाशवान अस्थिर शरीर को भोजन पान व पाँचों इन्द्रियों को पोखते–पोखते यह म त्यु को प्राप्त होता है। इन्द्रियों की क्षणिक तृ प्ति होती है। इस जड़ शरीर में आत्मा सदा स्थिर नहीं रह सकती। इसके भोजन–पान से आत्मा का कोई भला (उपकार) नहीं होता। यह भेदविज्ञान आपने संसारी प्राणियों को बताया।।18।।

मनुष्य अति आसक्त होता हुआ भी, राजा के भय से संसार में व्यसन सेवन (खोटे कामों को नहीं) करता, फिर इस लोक और परलोक दोनों जगह आसक्ति फल को जानने वाला ज्ञानी पुरुष विषय सुख में कैसे आसक्त हो सकता है? आपने जगत के जीवों को यह बताकर इन्द्रिय विषय सुख से विरक्त किया। ।19।।

यह विषयासक्ति संताप उत्पन्न करने वाली है। उसके अल्पमात्र सुख से जीव सन्तुष्ट नहीं होता। आपके मत में विषयों की चाह (विषयेच्छाओं) की निव त्ति से ही सच्चा सुख कहा है। इसलिये सुखाभिलाषी पुरुष विषयासक्ति को छोड़ो – यह उपदेश आपने दिया।।20।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5) श्रीसुमतिजिनस्तवनम्

अन्वर्थ-संज्ञः सुमतिर्मुनि-स्त्वं,
स्वयं मतं येन सुयुक्ति-नीतम् ।
यतश्च शेषेषु मतेषु नास्ति,
सर्व-क्रिया-कारक-तत्त्व-सिद्धि ॥ 21 ॥

अनेकमेकं च तदेव तत्त्वं,
भेदान्वय-ज्ञानमिदं हि सत्यम् ।
मृषोपचारोऽन्यतरस्य लोपे,
तच्छेष-लोपोऽपि ततोऽनुपाख्यम् ॥ 22 ॥

सतः कथञ्चित्तदसत्त्व-शक्तिः,
खे नास्ति पुष्पं तरुषु प्रसिद्धम् ।
सर्व-स्वभाव-च्युतमप्रमाणं,
स्व-वाग्विरुद्धं तव दृष्टितोऽन्यत् ॥ 23 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(5) श्रीसुमतिजिनस्तवनम्

हे भगवन्! आप प्रत्यक्षज्ञानी हैं तथा सुमति इस सार्थक संज्ञा से युक्त हैं आप 'सुमति' हैं। आपने बिना किसी प्रेरणा के उस धर्म को अंगीकार किया जो युक्ति संगत है। आपके मत के सिवाय अन्य मतों में क्रिया–कारक भाव की सिद्धि बिल्कुल ही नहीं होती।।21।।

आपने समझाया कि तत्त्व एक भी है और अनेक भी है, क्योंकि तत्त्व में भेद भी दिखाई देता है और साथ–साथ अन्वय (अभेद) भी दिखाई देता है। दोनों सत्य हैं। यदि इनमें से किसी एक को निकाल दिया जाए अर्थात् मिथ्या माना जायेगा तो उस तत्त्व का लोप हो जाएगा, वह अभावरूप सिद्ध होगा।।22।।

पदार्थ में सत्य–असत्य, भेद–अभेद, नित्य–अनित्य आदि विरोधी धर्म (गुण) अपना – अपना अस्तित्व रखते हैं। वक्ता के अभिप्राय में एक पक्ष मुख्य होता है, तो दूसरा गौण होता है। जब दूसरा मुख्य होता है तो मुख्य वाला गौण होता है। यह विवक्षा की स्वतन्त्रता है। यही अनेकान्त स्याद्वाद है। इस स्थिति में प्रत्यक्ष – सिद्ध वस्तु को अनदेखा (अलाप) करना ऐसा ही है कि कोई पुरुष यह कहे कि मेरी माँ बांझ है। अपने वचन को स्वयं ही अप्रमाण कहा माना जायेगा।।23।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

न सर्वथा नित्यमुदेत्यपैति,
न च क्रिया-कारकमत्र युक्तम् ।
नैवाऽसतो जन्म सतो न नाशो,
दीपस्तमः पुद्गल-भावतोऽस्ति ॥ 24 ॥

विधिर्निषेधश्च कथञ्चिदिष्टौ,
विवक्षया मुख्य-गुण-व्यवस्था ।
इति प्रणीतिः सुमते स्तवेयं,
मति-प्रवेकः स्तुवतोऽस्तु नाथ ॥ 25 ॥

इति श्रीसुमति-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्–विद्यमान पदार्थ का कभी नाश नहीं होता जैसे मिट्टी से घड़ा बना, घड़ा फूट गया, घड़े के टुकड़े पीस डाले, मिट्टी बन गयी, मिट्टी को मिट्टी में मिला दिया। मिट्टी मिट्टी में समा गयी, अतः सिद्ध हुआ कि सत् का कभी नाश नहीं होता और असत् का उत्पाद नहीं होता।

दीपक प्रकाशमान पुद्गल है उसे बुझा देने पर वह अन्धकार भी पुद्गल है। पुद्गल रूप तो वह दोनों ही अवस्थाओं में मौजूद है। इस तरह कथंचित् नित्य–अनित्य की मान्यता आपने बतायी।।24।।

वक्ता की इच्छा को विवक्षा कहते हैं। परस्पर दो विरोधी धर्मों के प्रथम पक्ष को 'अस्ति' या 'सत्' कहते हैं और दूसरा पक्ष विरोध रूप होने के कारण निषेध (नास्ति) कहलाता है। वक्ता की इच्छा नय भेद के अनुसार श्रोताओं के अनुरूप परिवर्तित होती रहती है। मुख्य गौण करती रहती है। यही पद्धति सर्वश्रेष्ठ है। हे भगवन्! यह श्रेष्ठमति मुझे प्राप्त होवे।।25।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(6) श्रीपद्मप्रभजिनस्तवनम्

पद्मप्रभः पद्म-पलाश-लेश्यः,
पद्माऽऽलयाऽऽलिंगित-चारु-मूर्तिः ।
बभौ भवान् भव्य-पयोरुहाणां,
पद्माऽऽकराणामिव पद्म-बन्धुः ॥ 26 ॥

बभार पद्मां च सरस्वतीं च,
भवान् पुरस्तात् प्रतिमुक्ति-लक्ष्म्याः ।
सरस्वतीमेव समग्र-शोभां,
सर्वज्ञ-लक्ष्मीं ज्वलितां विमुक्तः ॥ 27 ॥

शरीर-रश्मि-प्रसरः प्रभोस्ते,
बालार्क-रश्मि-च्छविरालिलेप ।
नराऽमराऽऽकीर्ण-सभां प्रभाव-
च्छैलस्य पद्माऽऽभ-मणेः स्व-सानुम् ॥ 28 ॥

नभस्तलं पल्लवयन्निव त्वं,
सहस्रपत्राऽम्बुज-गर्भचारैः ।
पादाऽम्बुजैः पातित-मार-दर्पो,
भूमौ प्रजानां विजहर्थ भूत्यै ॥ 29 ॥

गुणाऽम्बुधेर्विप्रुषमप्यजस्रं,
नाऽऽखण्डलः स्तोतुमलं तवर्षेः ।
प्रागेव मादृक् किमुताऽतिभक्ति-
र्मां बालमालाऽऽपयतीदमित्थम् ॥ 30 ॥

इति श्रीपद्मप्रभ-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(6) श्रीपद्मप्रभजिनस्तवनम्

पद्मप्रभ भगवान के शरीर का वर्ण लाल कमल जैसा था। जिनकी आत्मा अनन्त–ज्ञानादिरूप अंतरंग लक्ष्मी से (अतिशयों सहित) थी, ऐसे पद्मप्रभ जिनेन्द्र थे। आप संसारी भव्य–प्राणियों के हितोपदेशना के लिये सूर्य समान सिद्ध हुए थे। जैसे कमल वन को आह्लादित करता हुआ सूर्य। उसी प्रकार भव्यजीव–रूपी कमलों को विकसित करते हुये आनन्दविभोर करते हुए पद्मप्रभ सुशोभित हो रहे थे।।26।।

हे पद्मप्रभ जिनेन्द्र! आपने सिद्ध अवस्था को प्राप्त करने से पहले अरिहन्त अवस्था में अनन्तज्ञानादि लक्ष्मी और दिव्य ध्वनि को धारण किया था। तथा समवसरण में समस्त पदार्थों का निरूपण करने वाली दिव्य–ध्वनि (दिव्यवाणी) को धारण कर शेष बचे हुए चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर पूर्ण सिद्ध अवस्था प्राप्त की थी।।27।।

पद्मप्रभ भगवान पद्मरागमणि के समान आभा वाले थे। शरीर से प्रातः काल के उदित होते हुये बाल सूर्य की किरणों के समान एक स्वर्णमय आभावान थे। वह आभा समवसरण में उपस्थित देव व मानवों को व्याप्त कर रही थी। ऐसा जान पड़ता था कि पद्मरागमणि पर्वत की प्रभा अपनी कटनी को सुशोभित कर रही है।।28।।

भगवान ने घातिया कर्मों का सर्वथा नाश कर दिया था। उनका विहार भव्य जीवों के पुण्य से होता है। उनके चरणों में देव 225 स्वर्ण–कमलों की रचना करते हैं। उन कमल पत्रों का स्पर्श न करते हुए भगवान के रक्तवर्ण पदतलों से ऐसा जान पड़ता था मानों आकाश में लाल कोमल कलियों के दल ही व्याप्त है। यह विहार आकाश में होता है और प थ्वी पर अनेक देवोपनीत व केवलज्ञान के अतिशय भी प्रजा के कल्याण के लिये होते हैं।।29।।

हे भगवन! समस्त ऋद्धियों के निधान स्वरूप आपके गुणसागर की एक बूंद की भी इन्द्र पहिले ही स्तुति नहीं कर सका, तब मेरा जैसा असमर्थ मनुष्य कैसे समर्थ हो सकता है? अर्थात् नहीं हो सकता।।30।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7) श्रीसुपार्श्वजिनस्तवनम्

स्वास्थ्यं यदाऽऽत्यन्तिकमेष पुंसां,
स्वार्थो न भोगः परिभङ्गुराऽऽत्मा ।
तृषोऽनुषङ्गान्न च ताप-शान्ति-
रितीदमाख्यद् भगवान् सुपार्श्वः ॥ 31 ॥

अजङ्गमं जङ्गम-नेय यन्त्रं,
यथा तथा जीव-धृतं शरीरम् ।
बीभत्सु पूति क्षयि तापकं च,
स्नेहो वृथाऽत्रेति हितं त्वमाख्याः ॥ 32 ॥

अलङ्घ्य-शक्तिर्भवितव्यतेयं,
हेतु-द्वयाऽऽविष्कृत-कार्यलिङ्गा ।
अनीश्वरो जन्तुरहं-क्रियाऽऽर्तः,
संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥ 33 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(7) श्रीसुपार्श्वनाथजिनस्तवनम्

वैषयिक सुख का अनुभव बिजली की कौंध के समान है। वह क्षणभंगुर है, तृष्णावर्द्धक है। यह संसारी प्राणी रातदिन भोग सामग्री में लीन होकर उसे एकत्र करने में लगा रहता है। भगवन्! आपने कहा कि हे भद्रप्राणी! तू जिन भोगों के पीछे पड़ा है वे शान्ति के कारण नहीं हैं; तू अपने आत्मस्वरूप की ओर दृष्टि दे, उसी से तेरे सर्व तापों की शान्ति होगी।।31।।

यह शरीर जड़ पदार्थों से बना हुआ स्वयं हलन–चलन रहित निःस्पन्द है। किन्तु इसके अन्दर बैठा हुआ यह आत्मा इसको गतिशील करता है। हे आत्मन्! तू ज्ञान का पुंज है, गतिशील चेतन द्रव्य है। तू इस शरीर से भिन्न है।

आत्मा चेतन है, पर पुद्गल के साथ प्रवाह रूप अनादिकाल से एकक्षेत्रावगाह (दूध–पानी की तरह) हो रहा है। चेतन आत्मा जड़ नहीं हुआ और जड़ पुद्गल चेतन नहीं हुआ, न एक दूसरे में कोई अंश का घालमेल हुआ। इसलिये इस विजातीय घृणित परद्रव्य से स्नेह करना हितकारी नहीं है।।32।।

भवितव्यता–होनहार – किसी तरह टाली नहीं जा सकती। इस भवितव्यता की अपेक्षा नहीं रखने वाला अहंकार से पीड़ित हुआ यह संसारी प्राणी अनेक निमित्त मिलने पर भी सुख–दुःख कार्यों में असमर्थ है।

जीवों के सुख–दुःख कार्यों की उत्पत्ति उनके शुभ व अशुभ कर्मों की अनुकूलता होने पर होती है अथवा अंतरंग उपादान (उपयोग) और बाह्यय निमित्त दोनों की योग्यता होने पर ही होती है। मैं पुरुषार्थ करता हूँ। मैं सब तरह जोड़–तोड़, मन्त्र–तन्त्र का अनुष्ठान करने वाला प्राणी कभी समय अनुकूल होने पर सफल हो जाता हूँ। इसी को भवितव्यता, दैव, अदृष्ट, नियति, भाग्य, कर्म और होनहार कहा जाता है। अंतरंग कारण की अपेक्षा भवितव्यता और बहिरंग कारण की अपेक्षा पुरुषार्थ को प्रधानता दी जाती है।

जैनागम में अनेकान्त शैली की विवक्षा है। ईश्वरवादी कहते हैं कि भवितव्यता सर्वथा अलंघ्यशक्ति है (न टलने वाली) है, क्योंकि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो,
नित्यं शिवं वाञ्छति नाऽस्य लाभः ।
तथापि बालो भय-काम-वश्यो,
वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥ 34 ॥

सर्वस्य तत्त्वस्य भवान् प्रमाता,
मातेव बालस्य हिताऽनुशास्ता ।
गुणाऽवलोकस्य जनस्य नेता,
मयापि भक्त्या परिणूयसेऽद्य ॥ 35 ॥

इति श्रीसुपार्श्व-जिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
संसार और मोक्ष, सुखःदुख ईश्वर का किया हुआ है। ईश्वर की इच्छानुसार ही स्वर्ग–मोक्ष, सुखःदुख मिलता है। वे पुरुषार्थ को नहीं स्वीकारते।

यहाँ प्रश्न है कि किसी को नरक, किसी को स्वर्ग किस आधार पर देता है। अतः सिद्ध होता है कि जीवों की भवितव्यता उनके पूर्वकृत कर्म ही उनके स्वर्ग–नरक के कारण हैं, न कि ईश्वर की इच्छा। दैव, भाग्य, होनहार, भवितव्यता आदि पूर्वकृत कर्मों के उदय के बिना स्वतन्त्र कुछ नहीं कर सकता।

हे सुपार्श्वनाथ भगवन्! ये हितकारी बात आपने हमको बताई। हम आप की वन्दना करते हैं। ।।33।।

भवितव्यता के अनुकूल न होने पर यह जीव मृत्यु से डरता है, मृत्यु से बचने के लिये अनेक उपाय करता है, परन्तु आयु–कर्म की अनुकूलता न होने पर मृत्यु से छुटकारा नहीं मिलता, रंच मात्र भी आयु में वृद्धि नहीं होती। इसी प्रकार मोक्ष की भी अभिलाषा करता है, उसके अनुकूल तपश्चरण आदि भी करता है परन्तु उपादान–आत्मा की अनुकूलता न होने पर इसे मोक्ष भी प्राप्त नहीं होता। यह प्राणी दोनों कारणों की अनुकूलता का ध्यान न रख मात्र अपने पुरुषार्थ के बल पर कार्य सिद्ध करना चाहता है, और सिद्ध न होने पर दुःखी होता है। इसका मूलकारण जीव की अज्ञानता ही है। हे श्री सुपार्श्वजिन! यह यथार्थ सत्य आपने बताया है।।34।।

भगवन! आप सब पदार्थों के संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय से रहित प्रमाता हैं, ज्ञाता हैं। जिस प्रकार माता संतान को बिना किसी स्वार्थ भावना के हित का उपदेश देती है, उसी प्रकार आप भी हेयोपादेय के विवेक से रहित अज्ञानी जनों को मोक्ष का तथा उसके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्चारित्र का उपदेश देते हैं। इन्हीं सब कारणों से मैं समन्तभद्र आपकी स्तुति करता हूँ।।35।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(8) श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

चन्द्रप्रभं चन्द्र-मरीचि-गौरं,
चन्द्रं द्वितीयं जगतीव कान्तम् ।
वन्देऽभिवन्द्यं महतामृषीन्द्रं,
जिनं जित-स्वान्त-कषायबन्धम् ॥ 36 ॥

यस्याङ्ग-लक्ष्मी-परिवेष-भिन्नं,
तमस्तमोऽरेरिव रश्मि-भिन्नम् ।
ननाश बाह्यं बहुमानसं च,
ध्यान-प्रदीपाऽतिशयेन भिन्नम् ॥ 37 ॥

स्व-पक्ष-सौस्थित्य-मदाऽवलिप्ता,
वाक्-सिंहनादैर्विमदा बभूवुः ।
प्रवादिनो यस्य मदाऽऽर्द्र-गण्डा,
गजा यथा केशरिणो निनादैः ॥ 38 ॥

यः सर्वलोके परमेष्ठितायाः,
पदं बभूवाऽद्भुत-कर्म-तेजाः ।
अनन्त-धामाऽक्षर-विश्वचक्षुः,
समन्त-दुःख-क्षय-शासनश्च ॥ 39 ॥

स चन्द्रमा भव्य-कुमुद्वतीनां,
विपन्न-दोषाऽभ्र-कलंक-लेपः ।
व्याकोश-वाङ्-न्याय-मयूख-मालः,
पूयात् पवित्रो भगवान् मनो मे ॥ 40 ॥

इति श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(8) श्रीचन्द्रप्रभजिनस्तवनम्

हे भगवन्! आप चन्द्रमा के समान प्रभा के धारक थे। चन्द्र किरणों के जैसा आपके शरीर का गौरवर्ण था, मानों दूसरे चन्द्रमा ही हों। अभ्यन्तररूप में आप कर्मशत्रुओं को जीतने के कारण 'जिन' कहलाते थे। आपने कषायों को जीत लिया था, इसलिये गणधरादि, ऋषियों के स्वामी थे। शलाका पुरुष आपको नमस्कार करते हैं।।36।।

जिस प्रकार सूर्य की किरणों से खंडित हुआ रात्रि का अन्धकार दूर हो जाता है, उसी प्रकार आपके शुक्ल–ध्यान रूपी श्रेष्ठतम दीपक के प्रकाश से मानसिक अज्ञान समूह का अन्धकार नष्ट हो जाता है। आपके शरीर की कान्ति के भामण्डल से निकटवर्ती अन्धकार भी दूर हो जाता है।।37।।

आपके वचन युक्तिसंगत–अकाट्य होते थे, जिनको सुनकर बड़े–बड़े प्रंवादियों का मद चूर–चूर हो जाता था। साधारण प्रवादी ही नहीं, बल्कि जो अपनी विद्वत्ता के मद में चूर थे, उनका मद उसी तरह चूर हो जाता था जिस प्रकार युवा सिंह की गर्जना सुनकर मस्त हाथियों का झुंड तितर–बितर हो जाता है।।38।।

भगवान चन्द्रप्रभ तीनों लोक के परमात्मा – उत्कृष्ट अरिहंत थे। कर्मशत्रुओं को घातकर आश्चर्यकारी केव लज्ञानरूपी तेज प्रकाश आपमें प्रकट हुआ। लोकालोक को प्रकाशित करने वाला मोक्ष का धाम अनन्तानन्त केवल ज्ञान ही आपका अविनाशी चक्षु था जो चतुर्गति के दुःखों को दूर करने वाला था।।39।।

चन्द्रप्रभ भगवान को अद्वितीय चन्द्रमा की उपमा दी है। चन्द्रमा कमलनियों को विकसित करता है। जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी चाँदनी फैलाता है, उसी प्रकार आपके वचन स्पष्ट स्याद्वादरूपी किरणों की माला से युक्त थे। चन्द्रमा कलंकी है, परन्तु आप चन्द्रप्रभ भगवान कर्म मैल से रहित हैं, पवित्र हैं। हे भगवान! मेरे मन को पवित्र करें। मिथ्यात्व, अज्ञान और असंयम भाव से मेरे मन को सदा दूर रखें।।40।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9) श्रीसुविधिजिनस्तवनम्

एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधि तत्त्वं,
प्रमाण-सिद्धं तदतत्स्वभावम् ।
त्वया प्रणीतं सुविधे! स्वधाम्ना,
नैतत् समालीढ-पदं त्वदन्यैः ॥ 41 ॥

तदेव च स्यान्न तदेव च स्यात्,
तथा प्रतीते तव तत् कथञ्चित् ।
नाऽत्यन्तमन्यत्व-मनन्यता च,
विधेर्निषेधस्य च शून्य-दोषात् ॥ 42 ॥

नित्यं तदेवेदमिति प्रतीते-
र्न नित्यमन्यत् प्रतिपत्ति-सिद्धेः ।
न तदविरुद्धं बहिरन्तरंग-
निमित्त-नैमित्तिक-योगतस्ते ॥ 43 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(9) श्रीसुविधिजिनस्तवनम्

हे सुविधिनाथ जिनेन्द्र! जिस तत्त्व का आपने प्रतिपादन किया है वह एकान्त का निषेध करता है। दो विरोधी धर्मों में से पदार्थ के किसी एक धर्म को ही स्वीकार करना एकान्त कहलाता है। द्रव्य की अपेक्षा पदार्थ (आत्मा) नित्य रूप है और पर्याय की अपेक्षा अनित्य रूप है। आत्मा अजर अमर अविनाशी है। प्रतिक्षण उत्पाद .– व्यय और धौव्य उसकी पर्यायों में हो रहा है। ठीक यही प्रक्रिया समस्त पुद्गलों में घटित है। इस तत्व का स्वरूप आपने अपने केवलज्ञान रूपी तेज के द्वारा अच्छी तरह जानकर प्राणियों को बताया है।।41।।

प्रत्येक पदार्थ का विवेचन द्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव की अपेक्षा होता हैं। इसको जिनागम में स्वचतुष्टय (तद्रूप) और परचतुष्टय (अतद्रूप) कहते हैं। जैसे मनुष्य स्वद्रव्य–क्षेत्र–काल–भाव से मनुष्य रूप है और जब वह देव या नारकी होता है तब मनुष्य रूप नहीं है। यानी अस्तित्व और निषेध में न तो सर्वथा भिन्नता है और न सर्वथा अभिन्नता है। गुण गुणी में सर्वथा भिन्न या सर्वथा अभिन्न स्वीकृत मानने से संकर दोषों की आपत्ति आती है। इन्हीं दोषों से बचने के लिये अनेकान्त् स्याद्वाद कहा गया है।।42।।

मनुष्य की बाल–युवा – वृद्धादि अवस्थाओं में उस मनुष्य को देखकर कहना 'यह वही है' उसमें एकरूपता स्थापित करना और 'यह वह नहीं है' – इस विभिन्नता को स्थापित करना तुलनात्मक ज्ञान का काम है।

युवा अवस्था में माता उस बालक को स्तनपान नहीं करायेगी, क्योंकि युवा अवस्था में विकार उत्पन्न हो गया है। पदार्थ का नित्यानित्यपना विरुद्ध भी नहीं है, क्योंकि अंतरंग और बहिरंग कारण तथा उसके द्वारा होने वाले नैमित्तिक कार्य के योग से पदार्थ में नित्यानित्यपना सिद्ध है। कार्य की उत्पत्ति कारण के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनेकमेकं च पदस्य वाच्यं,
वृक्षा इति प्रत्ययवत् प्रकृत्या ।
आकाङ्क्षिणः स्यादिति वै निपातो,
गुणाऽनपेक्षे नियमेऽपवादः ॥ 44 ॥

गुण-प्रधानाऽर्थमिदं हि वाक्यं,
जिनस्य ते तद् द्विषतामपथ्यम् ।
ततोऽभिवन्द्यं जगदीश्वराणां,
ममापि साधोस्तव पाद-पद्मम् ॥ 45 ॥

इति श्रीसुविधिजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri
अनुसार होती है। कारण अंतरंग और बहिरंग दो प्रकार का होता है। अंतरंग उपादान और बहिरंग निमित्त है। जैसे मिट्टी उपादान, और कुम्भकार व उसके चाक, रस्सी, पानी आदि उपकरण बहिरंग (निमित्त) हैं। बहिरंग कारण स्वयं परिमणित नहीं होता वह उस क्षेत्र काल आदि के रूप में निमित्त होता है। यानी मिट्टी की अनेक पर्यायें होती हैं। जिनको देखने से नित्यानित्यपने का ज्ञान होता है।।43।।

जैनागम में पदार्थ को द्रव्य और पर्याय रूप कहा गया है। द्रव्य सामान्य को कहता है और पर्याय विशेष को। पर्याय द्रव्य को छोड़कर नहीं रह सकती और द्रव्य पर्याय को। दोनों एक–दूसरे पर आधारित हैं। इस दशा में किसी पदार्थ को एकान्त रूप कहना असंगत है। द्रव्य की अपेक्षा वस्तु एक है और पर्याय की अपेक्षा अनेक है। वक्ता 'स्यात्' शब्द का प्रयोग कर एक गुण को गौण और दूसरे को मुख्य कहता है। पदार्थ कथंचित् एक है और कथंचित् अनेक भी।।44।।

हे भगवन! आपने स्यात्पद से उपदेश दिया है। वह गौण और प्रधान भाव लिये हुए है। यह पद्धति ही समस्त जीवों की कल्याणकारी है। यह एकान्तवाद के विरुद्ध है। अन्यमत हितकारी नहीं है। आपके उपदेश की विशेषता से प्रभावित होकर इन्द्र, चक्रवर्ती आदि अनेक महापुरुष आपके चरण–कमलों की वंदना करते हैं, और मैं भी वन्दना करता हूँ ।।45।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(10) श्रीशीतलजिनस्तवनम्

न शीतलाश्चन्दन-चन्द्र-रश्मयो,
न गाङ्गमम्भो न च हार-यष्टयः ।
यथा मुनेस्तेऽनघ-वाक्य-रश्मयः,
शमाऽम्बु-गर्भाः शिशिरा विपश्चिताम् ॥ 46 ॥
सुखाऽभिलाषानल-दाह-मूर्च्छितं,
मनो निजं ज्ञानमयाऽमृताम्बुभिः ।
व्यदिध्यपस्त्वं विष-दाह-मोहितं-
यथा भिषग् मन्त्र-गुणैः स्व-विग्रहम् ॥ 47 ॥
स्व-जीविते कामसुखे च तृष्णया,
दिवा श्रमाऽऽर्ता निशि शेरते प्रजाः ।
त्वमार्य ! नक्तं दिवमप्रमत्तवा-
नजागरेवाऽऽत्म-विशुद्ध-वर्त्मनि ॥ 48 ॥
अपत्य-वित्तोत्तर-लोक-तृष्णया,
तपस्विनः केचन कर्म कुर्वते ।
भवान् पुनर्जन्म-जरा-जिहासया,
त्रयीं प्रवृत्तिं सम-धीरवारुणत् ॥ 49 ॥
त्वमुत्तम-ज्योतिरजः क्व निर्वृतः,
क्व ते परे बुद्धि-लवोद्धव-क्षताः ।
ततः स्व-निःश्रेयस-भावना परै
र्बुधप्रवेकैर्जिन! शीतलेड्यसे ॥ 50 ॥

इति श्रीशीतलजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(10) श्रीशीतलनाथजिनस्तवनम्

हे शीतलनाथ भगवान! आप मुनि हैं – प्रत्यक्षज्ञानी हैं, सर्वज्ञ हैं और वीतरागी हैं। सर्वज्ञ होने से आपके वचन भी सूर्यकिरणों के समान यथार्थ वस्तु को प्रकाशित करने वाले हैं। आपके वचन संताप को दूर करने वाले हैं। आपके वचन सुनकर जो शान्ति प्राप्त होती है वह चन्दन और चन्द्रमा की किरणों से, गंगा नदी के जल से, मोतियों की मालाओं से भी प्राप्त नहीं हो सकती है।।46।।

विषयसुख की अभिलाषा अग्नि की दाह के समान इस जीव को सदा जला रही है, उसकी शान्ति ज्ञानरूपी अमृत से ही होती है। आत्मा का स्वभाव शान्ति सुख व आनन्द है। वह आत्मा को आत्मा में ही प्रकट होती है। आपने निपुण वैद्य की तरह ज्ञानरूपी अमृतजल से विषयों पर विजय पाई है।।47।।

यह संसारी प्राणी अपने भोगोपभोग के विषयों को स्थिर रखने के लिये निरन्तर सारे दिन प्रयासरत रहता है और थक कर दुःखी होता हुआ रात्रि में सो जाता है। उसे आत्मशुद्धि व आत्म चिन्तन का समय ही नहीं मिलता जबकि हे प्रभो! आप निरन्तर आत्मविशुद्धि के मार्ग में पूर्ण जागरूक रहते हैं।।48।।

शैव, सांख्य आदि अन्यमतावलम्बी अग्नि, होम आदि द्वारा संसार के भोग और उपभोग व स्वर्गों की कामना करते हैं और अपने तपश्चरण को वृथा गवाते हैं। जिनेन्द्र! आप 'समधी' हैं क्योंकि आपका विवेक मोह (मिथ्यात्व) और क्षोभ (राग–द्वेष) रहित होने के कारण 'सम' है। आपने सम्यग् दर्शन–ज्ञान–चारित्र की भेद प्रवृत्ति को भी छोड़कर शुद्ध आत्मस्वरूप की लीनता रूप अभेद रत्नत्रय को धारण किया।।49।।

हे शीतलनाथ जिनेन्द्र! आप केवलज्ञान–ज्योति से युक्त हैं। आप अजन्मा हैं, अन्य सभी सजन्मा और सांसारिक सुखों की चाह में लगे रहने से दुःखी हैं। इस महान अन्तर के कारण आत्मकल्याण की भावना रखने वाले श्रेष्ठ ज्ञानी आपकी ही स्तुति करते हैं।।50।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(11) श्रीश्रेयोजिनस्तवनम्

श्रेयान् जिनः श्रेयसि वर्त्मनीमाः,
श्रेयः प्रजाः शासदजेय-वाक्यः ।
भवांश्चकासे भुवनत्रयेऽस्मिन्,
नेको यथा वीत-घनो विवस्वान् ॥ 51 ॥

विधिर्विषक्तप्रतिषेधरूपः,
प्रमाणमत्रान्यतरत् प्रधानम् ।
गुणोऽपरो मुख्य-नियाम-हेतु-
र्नयः स दृष्टान्तसमर्थनस्ते ॥ 52 ॥

विवक्षितो मुख्य इतीष्यतेऽन्यो,
गुणोऽविवक्षो न निरात्मकस्ते ।
तथाऽरि-मित्राऽनुभयादि-शक्ति
द्वयाऽवधिः कार्यकरं हि वस्तु ॥ 53 ॥

दृष्टान्तसिद्धावुभयोर्विवादे,
साध्यं प्रसिद्ध्येन्न तु तादृगस्ति ।
यत् सर्वथैकान्त-नियामि दृष्टं,
त्वदीय दृष्टिर्विभवत्यशेषे ॥ 54 ॥

एकान्तदृष्टि-प्रतिषेधसिद्धि-
र्न्यायेषुभिर्मोहरिपुं निरस्य ।
असि स्म कैवल्य-विभूति-सम्राट,
ततस्त्वमर्हन्नसि मे स्तवार्हः ॥ 55 ॥

इति श्रेयोजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(11) श्री श्रेयोजिनस्तवनम्

हे भगवन! आपके वचन अकाट्य हैं। मेघों के आवरण से रहित सूर्य के समान प्रकाशमान आपने संसारी प्राणियों को कल्याणकारी मोक्षमार्ग का हितोपदेश दिया।।51।।

जो विधि–पक्ष और निषेधपक्ष दोनों को ग्रहण करता है उसे प्रमाण कहते हैं। वक्ता दोनों को एक साथ नहीं कह सकता। वह कथन करते समय एक बात को मुख्य और दूसरे को गौण बनाता है। वक्ता की इस पद्धति को नय कहते हैं।।52।।

वक्ता की इच्छा को विवक्षा कहते हैं। जो विवक्षा से युक्त होता है वह विवक्षित कहलाता है – दूसरा अविवक्षित पदार्थ अभावरूप नहीं है। जैसे देवदत्त अपकारी होने से यज्ञदत्त का शत्रु है, और उपकारी होने से रामदत्त का मित्र है और श्याम दत्त का उपकारी और अनुपकारी होने से शत्रु मित्र दोनों है। और उदासीन होने से शत्रु मित्र कुछ भी नहीं है। वास्तव में प्रत्येक पदार्थ में विधि–निषेध, भाव–अभाव द्रव्य–पर्याय आदि दो रूप पाये जाते हैं, तभी वस्तु का लक्षण अनेकान्त रूप से वर्णित होता है और वह कार्यकारी होता है।।53।।

एकान्त दृष्टि और अनेकान्त दृष्टि को लेकर वादी और प्रतिवादी में विवाद खड़ा होता है। जिसका हल दृष्टान्त के द्वारा होता है। यथार्थ में कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जिसका दोनों नयों से समर्थन न हो सके। अनेकान्त पक्ष एक बात को प्रधान और दूसरी को गौण कर के कहता है, जो युक्ति–संगत बैठती है। हे श्रेयो जिन! वह अनेकान्त दृष्टि ही आपने स्वीकार की है, श्रेष्ठ बतायी है।।54।।

हे श्रेयो जिन! आपने ज्ञानावरणादि घातिया कर्मों का नाश कर अज्ञान रूपी शत्रु को मोह सहित नष्ट कर दिया और कैवल्य लक्ष्मी प्राप्त कर ली। आप धर्मचक्रवर्ती हुए। समवशरण अष्टप्रातिहार्य रूप लक्ष्मी के स्वामी हुए। आपने अनेकान्त दृष्टि से नय और प्रमाणों के द्वारा एकान्तवाद को छेद डाला। आप परमार्थ सम्पत्ति से युक्त हैं। मैं आपकी वंदना करता हूँ।।55।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(12) श्रीवासुपूज्यस्तवनम्

शिवासु पूज्योऽभ्युदयक्रियासु,
त्वं वासुपूज्यस्त्रिदशेन्द्र-पूज्यः ।
मयाऽपि पूज्योऽल्पधिया मुनीन्द्र ।
दीपार्चिषा किं तपनो न पूज्यः ॥ 56 ॥

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे,
न निन्दया नाथ! विवान्त-वैरे ।
तथापि ते पुण्य-गुण-स्मृतिर्नः,
पुनातु चित्तं दुरिताञ्जनेभ्यः ॥ 57 ॥

पूज्यं जिनं त्वाऽर्चयतो जनस्य,
सावद्य-लेशो बहु-पुण्य राशौ ।
दोषाय नालं कणिका विषस्य,
न दूषिका शीत-शिवाऽम्बु-राशौ ॥ 58 ॥

यद् वस्तु बाह्यं गुण-दोष-सूते-
र्निमित्तमयभ्यन्तर-मूल-हेतोः ।
अध्यात्मवृत्तस्य तदंगभूतः
मभ्यन्तरं केवलमप्यलं ते ॥ 59 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(12) श्रीवासुपूज्यजिनस्तवनम्

बारहवें तीर्थंकर राजा वासुपुज्य के पुत्र होने के कारण "वासुपूज्य" इस सार्थक नाम को धारण करने वाले थे। आप पाँचों कल्याणकों में सौधर्म आदि इन्द्रों द्वारा भी पूजित हुए थे। मुझ अल्पबुद्धि समन्तभद्र द्वारा आपकी स्तुति पूजा ऐसी ही है जैसे सूर्य की दीपक से आरती उतारना। फिर भी मैं आपके गुणों की पूजा के लिये उद्यत हुआ हूँ, मेरी पूजा स्वीकार हो।।56।।

हे नाथ! आप वीतरागी हैं। आपको किसी की पूजा से कोई सरोकार नहीं और निन्दक की निन्दा से भी नहीं, फिर भी आपके प्रशस्त गुणों का स्मरण करने से हमारा चित्त पाप रूपी कलिमा से रहित होता है। आप हमारी रक्षा करें।।57।।

आपकी पूजा के काल में सामग्री जुटाते समय आरम्भ आदि के कारण पूजा करने वाले को अल्पतम द्रव्यहिंसा होती है। परन्तु उससे पूजक का कोई अहित नहीं होता, बल्कि विशाल पुण्यलाभ होता है। यह ठीक उसी प्रकार है जैसे कि शीतल समुद्र में एक बूँद विष, उस शीतल समुद्र का कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती।।58।।

कार्य की उत्पत्ति अन्तरंग और बहिरंग अर्थात् उपादान और निमित्त दोनों कारणों से होती है। बाह्य सामग्री के द्वारा भी पूजा अंतरंग भाव प्रधान होती है और किसी विशेष स्थिति में बाह्य कारण बिना भी होती है।।59।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बाह्येतरोपाधि-समग्रतेयं,
कार्येषु ते द्रव्यगतः स्वभावः ।
नैवान्यथा मोक्षविधिश्च पुंसां,
तेनाभिवन्द्यस्त्वमृषिर्बुधानाम् ॥ 60 ॥

इति श्रीवासुपूज्यजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

योग्य उपादान (उत्तम मिट्टी), कुम्भकार एवं उसके उपकरण साधन आदि निमित्त के योग बिना घट की उत्पत्ति नहीं होती है। जब अंतरंग और बहिरंग दोनों कारणों की अनुकूलता हो तो कार्य पूर्ण सार्थक होता है। द्रव्य का स्वभाव है "क्रियाकारित्व"। मोक्ष द्रव्य की पर्याय है। उसका उपादान कारण सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की पूर्णता से युक्त भव्य प्राणी है। सहकारी कारण साधुओं का कर्म भूमिज मनुष्य का शरीर आदि है। दोनों की अनुकूलता होने पर ही मुक्ति प्राप्त होती है, यानी जीव द्रव्य में 'मोक्ष' पर्याय रूप कार्य की उत्पत्ति होती है। मात्र उपादान या मात्र निमित्त से कार्य नहीं होता। उपादान–उपादेय सम्बध केवल एक द्रव्य में ही बनता है, अन्य भिन्न पदार्थों में नहीं। परन्तु इतने मात्र से निमित्त–नैमित्तिक भाव का निषेध नहीं हो सकता। यह सिद्धांत है कि निमित्त–नैमित्तिक भाव दो भिन्न द्रव्यों में ही बनता है।

कर्मरूप पुदग्लों से विकारी भावों की उत्पत्ति है और जीव के रागादि भावों से पुदग्ल द्रव्य में कर्मरूप पर्याय की उत्पत्ति होती है। इनसे यह प्राणी चारों गतियों में जन्म–मरण करता है। यह प्रत्यक्षसिद्ध है, इसको अनदेखा, नकारा नहीं जा सकता है। समस्त ऋषि–मुनि और गणधरादि आपकी सब ओर से मनसा–वाचा–कर्मणा वन्दना करते हैं।।60।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(13) श्रीविमलजिनस्तवनम्

य एव नित्य-क्षणिकाऽऽदयो नया,
मिथोऽनपेक्षाः स्व-पर-प्रणाशिनः ।
त एव तत्त्वं विमलस्य ते मुनेः,
परस्परेक्षाः स्व-परोपकारिणः ॥ 61 ॥

यथैकशः कारकमर्थ-सिद्धये,
समीक्ष्य शेषं स्व-सहाय-कारकम् ।
तथैव सामान्य-विशेष-मातृका,
नयास्तवेष्टा गुण-मुख्य-कल्पतः ॥ 62 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(13) श्रीविमलनाथजिनस्तवनम्

द्रव्य और पर्याय दोनों को नय की अपेक्षा एक को मुख्य व दूसरे को गौण करना यह वक्ता की विवक्षा कहलाती है। दूसरी यानी पर्याय की व्यवस्था की उपेक्षा भी नहीं की जा सकती, इसको अनेकान्तवाद कहते हैं। इनकी उपेक्षा करने पर दोनों परस्पर निरपेक्ष हो जाते हैं, जो दुर्नय कहे जाते हैं। यह तत्त्व का रहस्य हे विमलनाथ भगवान! आपने बताया।।61।।

जो क्रिया को करे उसे कर्ता, कर्म, करण, सम्प्रदान, अपादान, अधिकरण छः कारक कहते हैं। कारक कर्ता कर्म आदि के भेद से अनेक प्रकार का होता है। ये सब कारक अपने अन्य सहायक कारक की अपेक्षा रख कर कार्य की सिद्धि में समर्थ होते हैं, निरपेक्ष नहीं।

उपादान सहकारी कारण की अपेक्षा रखता है और सहकारी कारण उपादान की अपेक्षा रखता है। यह बात जुदा है कि एक दूसरे को मुख्य व गौण रखे।

खेती में किसान उत्तम बीज न बोये तो फसल प्राप्त नहीं होगी, और उचित खाद पानी जुताई नराई न करे तो फसल मारी जाय। दोनों अवस्थाओं में किसान दुःखी हुआ। अतः सिद्ध हुआ कि उपादान और निमित्त का सुमेल ही कार्यकारी है, उसी से कार्य की सिद्धि है। इसी प्रकार जिनागम में द्रव्य और पर्याय अर्थात् निश्चय और व्यवहार ये दो नय ही मान्य हैं। इनके सापेक्ष रह कर ही कार्य की सिद्धि होती है, निरपेक्ष रह कर नहीं। हे विमलनाथ भगवन्! आपने यह बताया।।62।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परस्परेक्षाऽन्वयभेदलिंगतः,
प्रसिद्ध-सामान्यविशेषयोस्तव ।
समग्रताऽस्ति स्व-पराऽवभासकं,
यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम् ॥ 63 ॥

विशेष्यवाच्यस्य विशेषणं वचो,
यतो विशेष्यं विनियम्यते च यत् ।
तयोश्च सामान्यमतिप्रसज्यते,
विवक्षितात् स्यादिति तेऽन्य-वर्जनम् ॥ 64 ॥

नयास्तव स्यात्पद-सत्य-लाञ्छिता,
रसोपविद्धा इव लोह-धातवः ।
भवन्त्यभिप्रेत गुणा यतस्ततो,
भवन्तमार्याः प्रणता हितैषिणः ॥ 65 ॥

इति श्रीविमलजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार के प्रत्येक पदार्थ में अन्वय और व्यतिरेक, अभेद और भेद का ज्ञान होता है। "यह वही है" – यह कहने पर वर्तमान पर्याय व पूर्व पर्याय का ज्ञान होता है। यह भेद–अभेद सब द्रव्यों में सामान्य और विशेष रूप ज्ञान द्वारा होता है। "जैन दर्शन ज्ञान को प्रमाण मानता है। जिस प्रकार ज्ञान में स्व–पर परकाशकत्व ये दो धर्म स्वतः सिद्ध हैं, उसी प्रकार प्रत्येक पदार्थ में सामान्यता और विशेषरूपता दोनों स्वतः सिद्ध है।।63।।

जिनकी विशेषता बताई जाती है वह विशेष्य और विशेषता विशेषण कहलाती है जैसे 'कृष्ण सर्प'। यह विशेषण और विशेष्य कहीं सामान्य होता है और कहीं विशेष/वक्ता जिसे कहना चाहता है वह विवक्षित होता है और जिसे नहीं कहना चाहता वह अविवक्षित होता है। 'स्यात्' (नय) के प्रभाव से विवक्षित ग्रहण होता है और अविवक्षित का निराकरण होता है।।64।।

'स्यात्' पद की महिमा बताते हुये आचार्य समन्तभद्र बताते हैं कि यह 'स्यात्' पद वस्तु के परमार्थस्वरूप का प्रतिपादक है – स्वर्ग, मोक्ष आदि का फलदायक है। इसके बिना नय मिथ्यानय कहलाते हैं, और साधक को इष्ट फल की प्राप्ति नहीं होती है।।65।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14) भगवदनन्तजिनस्तवनम्

अनन्त-दोषाऽशय-विग्रहो ग्रहो,
विषङ्गवान् मोहमयश्चिरं हृदि ।
यतो जितस्तत्त्वरुचौ प्रसीदता,
त्वया ततोऽभूर्भगवान नन्तजित् ॥ 66 ॥

कषाय-नाम्नां द्विषतां प्रमाथिना
मशेषयन्नाम भवानशेषवित् ।
विशोषणं मन्मथ-दुर्मदाऽऽमयं,
समाधिभैषज्य-गुणैर्व्यलीनयत् ॥ 67 ॥

परिश्रमाऽम्बुर्भय-वीचि-मालिनी,
त्वया स्व-तृष्णा-सरिदाऽऽर्य! शोषिता ।
असङ्ग-घर्माऽर्क-गभस्ति-तेजसा,
परं ततो निर्वृति-धाम तावकम् ॥ 68 ॥

सुहृत् त्वयि श्रीसुभगत्वमश्नुते,
द्विषंस्त्वयि प्रत्ययवत् प्रलीयते ।
भवानुदासीनतमस्तयोरपि,
प्रभो परं चित्रमिदं तवेहितम् ॥ 69 ॥

त्वमीदृशस्तादृश इत्ययं मम,
प्रलाप-लेशोऽल्पमतेर्महामुने! ।
अशेष-माहात्म्यमनीरयन्नपि,
शिवाय संस्पर्श इवाऽमृताम्बुधेः ॥ 70 ॥

इत्यनन्तजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(14) श्रीअनन्तजिनस्तवनम्

मोह–मायारूपी ग्रह पिशाच को आपने जीत लिया, यह अनन्त संसार में रुलाता है। आपने अपना 'अनन्त' नाम सार्थक किया है। समस्त पदार्थ मेरे हैं और मैं इनका हूँ – ऐसा मिथ्या आग्रह आपने सम्यग्दर्शन द्वारा पराजित कर दिया और आप अनन्तजिन हो गये।।66।।

आत्मा में मोह रूपी पिशाच के बाद दूसरा स्थान कामवासना का दर्प है। इस दर्प को अपने समाधिरूपी औषध से समाप्त कर दिया और आप सर्वज्ञ हुए।।67।।

भोगाकांक्षाओं की तृष्णा की पूर्ति के लिये यह मनुष्य भोगोपभोग की सामग्री जुटाने में ही अथक परिश्रम करता है, और उसके नष्ट होने का इसको भय लगा रहता है। आपने इस तृष्णा रूपी नदी को अपने निष्परिग्रहिता रूपी सूर्य के तेज से पूरा सुखा दिया, उसमें एक बूँद भी तृष्णा नहीं छोड़ी और आप मोक्षधाम को प्राप्त हुये।।68।।

आप सहृदय हैं, सुभगत हैं। आप निन्दा स्तुति से दूर–दूर हैं, आपका निन्दक स्वयं नष्ट हो जाता है और स्तुतिकर्ता अध्यात्मिक पद पाता है। आप तो दोनों में उदासीन हैं। आपका चरित्र आश्चर्यकारी है जो अन्य देवों में नहीं है।।69।।

नाथ! आप महामुनि अर्थात् समस्त पदार्थों के जानने वाले हैं। मैं अल्पज्ञ आपकी स्तुति में बस यही कह सकता हूँ कि तुम ऐसे हो, वैसे हो, परन्तु आपकी महिमा को न कहता हुआ भी भक्ति से उसी तरह ओत–प्रोत हूँ जैसे अमृत के समुद्र में उन्मंजन तो दूर रहा, उस जल के स्पर्श मात्र से भी सुख–शान्ति मिलती है।।70।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15) श्रीधर्मजिनस्तवनम्

धर्म-तीर्थमनघं प्रवर्तयन्,
धर्म इत्यनुमतः सतां भवान् ।
कर्म-कक्षमदहत् तपोऽग्निभिः,
शर्म शाश्वतमवाप शंकरः ॥ 71 ॥

देव-मानव-निकाय-सत्तमै,
रेजिषे परिवृतो वृतो बुधैः ।
तारका-परिवृतोऽतिपुष्कलो,
व्योमनीव शश-लाञ्छनोऽमलः ॥ 72 ॥

प्रातिहार्य-विभवैः परिष्कृतो,
देहतोऽपि विरतो भवानभूत् ।
मोक्षमार्गमशिषन् नराऽमरान्,
नापि शासन-फलैषणाऽऽतुरः ॥ 73 ॥

काय-वाक्य-मनसां प्रवृत्तयो,
नाऽभवंस्तव मुनेश्चिकीर्षया ।
नाऽसमीक्ष्य भवतः प्रवृत्तयो,
धीर! तावकमचिन्त्यमीहितम् ॥ 74 ॥

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान्,
देवतास्वपि च देवता यतः ।
तेन नाथ ! परमाऽसि देवता,
श्रेयसे जिनवृष! प्रसीद नः ॥ 75 ॥

इति श्रीधर्मजिन-स्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(15) श्रीधर्मनाथजिनस्तवनम्

आप गणधरादि देवों के द्वारा इस धर्म नाम को सार्थक मानते हैं। आप धर्म तीर्थ का प्रतिपादन करने वाले आगम के चलाने वाले हुए। आपने अपनी तप रूपी अग्नि से ज्ञानावरणादि अष्ट कर्मों को दग्ध कर दिया। आप शाश्वत हो। आपका दूसरा नाम शंकर भी है।।71।।

आप समोसरण के मध्य देवों एवं मानवों द्वारा सुशोभिता हो, गणधरादि विद्वानों द्वारा घिरे हुए आप ऐसे सुशोभित हो जैसे आकाश में ताराओं से परिवेष्टित घनपटल से रहित संपूर्ण चन्द्रमा सुशोभित होता है।।72।।

हे भगवन! आप समवसरणादि अष्ट–प्रातिहार्यों से विभूषित होते हुए भी न केवल उनसे किन्तु अपने शरीर से भी ममत्व रहित थे। आपने मनुष्यों और देवों को मोक्षमार्ग का उपदेश दिया था परन्तु आप उस उपदेश के फल से आतुर – व्यग्र नहीं हुए थे।।73।।

परिषह व अन्यमतावलम्बियों के प्रश्नों से चित्त को क्षुभित न करने वाले हे वीर जिनेन्द्र! आपके मन, वचन, काय की चेष्टाएँ बिना इच्छा के तीर्थंकर नाम प्रकृति के उदय से होती हैं। आपका चरित्र अचिन्तनीय हैं।।74।।

हे धर्मनाथ! आप मनुष्यगति में उत्पन्न हुए थे, फिर भी आप हम मनुष्यों से तुलनीय नहीं थे। आप चौंतीस अतिशय व अष्ट प्रातिहार्य से युक्त थे, मलमूत्र रहित थे। आप तो देवों के भी देव थे।

हे जिनेन्द्र! हमारे कल्याण के लिये प्रसन्न हूजिये।।75।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(16) श्रीशान्तिजिनस्तवनम्

विधाय रक्षां परतः प्रजानां,
राजा चिरं योऽप्रतिम-प्रतापः ।
व्यधात् पुरस्तात् स्वत एव शान्ति-
र्मुनिर्दयामूर्तिरिवाघ-शान्तिम् ॥ 76 ॥

चक्रेण यः शत्रु-भयंकरेण,
जित्वा नृपः सर्व-नरेन्द्र-चक्रम् ।
समाधि-चक्रेण पुनर्जिगाय,
महोदयो दुर्जय-मोह-चक्रम् ॥ 77 ॥

राज-श्रिय राजसु राज-सिंहो,
रराज यो राज-सुभोग-तन्त्रः ।
आर्हन्त्य-लक्ष्म्या पुनरात्म-तन्त्रो,
देवाऽसुरोदार-सभे रराज ॥ 78 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(16) श्रीशान्तिनाथजिनस्तवनम्

आपने शत्रुओं से प्रजा की रक्षा की। आप सदा अतुल पराक्रमधारी थे, चक्रवर्ती थे। आप स्वयं दीक्षित होकर दया की मूर्ति हो गये थे। मेरे पापों का शमन कर मेरी आत्मा को निर्मल बनाइये।।76।।

आप 'महोदय' अर्थात् तीर्थंकरत्व से युक्त सुदर्शन चक्रधारी चक्रवर्ती थे। सर्वविध शत्रु आपसे भयभीत रहते थे। आप नृपों में राजाधिराज थे। शुक्ल ध्यान रूपी समाधिचक्र से आपने दुर्जय मोह को जीत लिया था।।77।।

भगवान शान्तिनाथ राजसिंह थे, चक्रवर्ती थे। राजाओं के उत्तमोत्तम भाजन, भोजन, शय्या, सेना, मान, आसन, निधि, रत्न, नगर और नाट्य इन दश प्रकार के भोगों से युक्त थे। नौ निधि, तथा चौदह रत्नों से सुशोभित थे। वहीं श्री शान्तिनाथ शुक्ल ध्यान के द्वारा घातिचतुष्क को नष्ट कर अरिहन्त अवस्था को प्राप्त हुए और पूर्ण आत्माधीन हो गये। कुबेर द्वारा रचित समवसरण जो तीर्थंकर प्रकृति की उत्कृष्ट विभूति है उस विभूति के स्वामी हुये।।78।।

4887

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यस्मिन्नभूद्राजनि राज-चक्रं,
मुनौ दया-दीधिति धर्म-चक्रम् ।
पूज्ये मुहुः प्राञ्जलि देव-चक्रं,
ध्यानोन्मुखे ध्वंसि कृतान्त-चक्रम् ॥ 79 ॥

स्व-दोष-शान्त्या विहितात्म-शान्तिः,
शान्तेर्विधाता शरणं गतानाम् ।
भूयाद् भव-क्लेश-भयोपशान्त्यै,
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्यः ॥ 80 ॥

इति श्रीशान्तिजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान शान्तिनाथ जब चक्रवर्ती थे, समस्त राजाओं का समूह आपके आगे हाथ जोड़े आपके आदेश की प्रतीक्षा में तत्पर रहता था। जब ग ह त्याग मुनि हुए तब दशधर्मों का समूह दया को प्रकाशित करता हुआ स्वाधीन हुआ। जब शुक्ल ध्यान के तेज से चार घतिया कर्मों का क्षय किया। तब देवोपनीत चौदह अतिशय विशेष प्रकट हुए। जब समवसरण में विराजमान हुए, आपकी दिव्य ध्वनि खिरी और हितोपदेश दिया तब चतुर्णिकाय देव बार–बार हाथ जोड़ गद्‌गद् हो गये। जब चौदहवें गुणस्थान व्युपरत क्रियानिवर्ति के सन्मुख हुए तब सत्ता में स्थित पिचासी प्रकृतियों का समूह नाशोन्मुख हुआ "रक्ष मां" की आवाज लगाता हुआ म त्युरूपी यमराज का चक्र नष्ट करता हुआ आपके स्वाधीन हो गया अर्थात् आपने सदा के लिये मृ त्यु पर भी विजय पा ली।।79।।

जब तक मनुष्य अपने दोषों को शान्त नहीं कर देता तब तक शरणागत मनुष्यों को शान्ति नहीं प्राप्त करा सकता। आपने राग–द्वेष–मोह को नष्ट कर दिया। जिसके फलस्वरूप आप शरणागत प्राणियों के भी शान्ति–विधाता हो गये। जो अष्ट कर्मशत्रुओं को जीत कर मोह–बली को जीतकर अष्ट प्रातिहार्यरूप लोकोत्तर वैभव सहित होता है वही भगवान बनता है और 'जिन' कहलाता है। समवसरण में अभय का वातावरण रहता है। जीवों का जन्मजात विरोध दूर हो जाता है, इसलिये आपको रक्षा करने में निपुण कहा गया है। हे भगवन! मेरे परिभ्रमण को, क्लेशों तथा भय को शान्त करो। आपकी स्तुति के फलस्वरूप मैं जन्म–मरण से छूट जाऊँ। मुझे मुक्ति प्राप्त हो जावे।।80।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(17) श्रीकुन्थुजिनस्तवनम्

कुन्थु-प्रभृत्यखिल-सत्त्व-दयैक-तानः,
कुन्थुर्जिनो ज्वर-जरा-मरणोपशान्त्यै ।
त्वं धर्मचक्रमिह वर्तयसि स्म भूत्यै,
भूत्वा पुरा क्षिति-पतीश्वर-चक्रपाणिः ॥ 81 ॥

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा-
मिष्टेन्द्रियार्थ-विभवैः परिवृद्धिरेव ।
स्थित्यैव काय-परिताप-हरं निमित्त-
मित्यात्मवान् विषय-सौख्य-पराङ्मुखोऽभूत् ॥ 82 ॥

बाह्यं तपः परम-दुश्चरमाचरै त्व-
माध्यात्मिकस्य तपसः परिबृंहणार्थम् ।
ध्यानं निरस्य कलुष-द्वयमुत्तरस्मिन्,
ध्यान-द्वये ववृतिषेऽतिशयोपपन्ने ॥ 83 ॥

हुत्वा स्व-कर्म-कटुक-प्रकृतीश्चतस्रो,
रत्नत्रयातिशय-तेजसि जात-वीर्यः ।
बभ्राजिषे सकल-वेद-विधेर्विनेता,
व्यभ्रे यथा वियति दीप्त-रुचिर्विवस्वान् ॥ 84 ॥

यस्मान् मुनीन्द्र! तव लोकपितामहाद्या,
विद्या-विभूति-कणिकामपि नाऽऽप्नुवन्ति ।
तस्माद् भवन्तमजमप्रतिमेयमार्याः,
स्तुत्यं स्तुवन्ति सुधियः स्व-हितैक-तानाः ॥ 85 ॥

इति श्रीकुन्थुजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(17) श्री कुन्थुनाथजिनस्तवनम्

कुन्थुनाथ भगवान कुन्थु आदि सूक्ष्म जीवों पर भी दया का विस्तार करने वाले थे, अतः उनका 'कुन्थुनाथ' नाम सार्थक था। आप चक्रवर्ती व तीर्थंकर दोनों पदवी के धारक थे। आपने ग हस्थ अवस्था में राजवैभव के लिये राजाधिराज होकर चक्ररत्न को प्रवर्तित किया था और वीतराग अवस्था में उत्कृष्ट मोक्षलक्ष्मी के लिये भरतक्षेत्र में धर्मचक्र को प्रवर्तित किया था।।81।।

मिथ्या–विषयाकांक्षारूप अग्नि की ज्वालाएँ इस जीव को हर द्र ष्टि से जला रही हैं। इष्ट इन्द्रियों के विषयों से इन इच्छाओं की शान्ति नहीं होती, उसके विपरीत तृ ष्णा निरन्तर बढ़ती रहती है। मात्र शरीर का ताप दूर हो जाता है, अन्तरात्मा का ताप नहीं। यह सब विचार कर आप विषय जन्य सुख से पराङ्मुख हुए थे।।82।।

हे भगवन्! आपने अंतरंग की व द्धि के लिये दुद्धर तप धारण किया था। मुनि अवस्था में आर्त रौद्र इन दो अशुभ ध्यानों को क्षयकर धर्म और शुक्ल इन दो शुभ ध्यानों में निमग्न हुये थे। तथा उनके फलस्वरूप आपने सर्व कर्मों का क्षय किया था।।83।।

कुन्थुनाथ भगवान ने चार घातिया प्रकृतियों का क्षय करके समवसरण विभूति से विराजमान होकर दिव्यध्वनि द्वारा जो पदार्थों का उपदेश दिया था उसी आधार पर चार ज्ञान धारी गणधर देवों ने द्वादशांग रूप परमागम की रचना की थी। मूल में आप ही परमागम के प्रणेता कहे जाते हो। आप उस समवसरण में ऐसे सुशोभित हो रहे थे जैसे कि मेघ रहित आकाश में प्रचण्ड किरणों से युक्त सूर्य सुशोभित होता है।।84।।

हे मुनि! चूँकि बह्मा–विष्णु आदि लौकिक देवता आपकी केवलज्ञान विभूति के कण मात्र को भी नहीं प्राप्त कर सके हैं, इसीलिये उत्तम बुद्धि के धारक गणधर देव जो आत्महित में निमग्न हुवे हैं और मोक्षाभिलाषी हैं, वे जन्म–मरण रहित आपकी ही स्तुति करते हैं।।85।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(18) भगवदर-जिनस्तवनम्

गुण-स्तोकं सदुल्लङ्घ्यतद्बहुत्व-कथा स्तुतिः ।
आनन्त्यात्ते गुणा वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ॥ 86 ॥

तथापि ते मुनीन्द्रस्य यतो नामापि कीर्तितम् ।
पुनाति पुण्य-कीर्तेर्नस्ततो ब्रूयाम किञ्चन ॥ 87 ॥

लक्ष्मी-विभव-सर्वस्वं मुमुक्षोश्चक्र-लाञ्छनम् ।
साम्राज्यं सार्वभौमं ते जरत्तृणमिवाभवत् ॥ 88 ॥

तव रूपस्य सौन्दर्यं दृष्ट्वा तृप्तिमनापिवान् ।
द्व्यक्षः शक्रः सहस्राक्षो बभूव बहुविस्मयः ॥ 89 ॥

मोहरूपो रिपुः पापः कषाय-भट-साधनः ।
दृष्टि-संविदुपेक्षाऽस्त्रस्त्वया धीर! पराजितः ॥ 90 ॥

कन्दर्पस्योद्धरो दर्पस्त्रैलोक्य-विजयाऽर्जितः ।
ह्रेपयामास तं धीरे त्वयि प्रतिहतोदयः ॥ 91 ॥

आयत्यां च तदात्वे च दुःख-योनिर्दुरुत्तरा ।
तृष्णा-नदी त्वयोत्तीर्णा विद्या-नावा विविक्तया ॥ 92 ॥

अन्तकः क्रन्दको नृणां जन्म-ज्वर-सखा सदा ।
त्वामन्तकान्तकं प्राप्य व्यावृत्तः काम-कारतः ॥ 93 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(18) श्री अरजिनस्तवनम्

थोड़ी बात को बढ़ा–चढ़ा कर कहना स्तुति कहलाती है, परन्तु आपके गुण अनन्त होने से कहने में नहीं आते, तब आपकी स्तुति कैसे हो सकती है? ।।86।।

हे भगवन! स्तुति का लक्षण घटित न होने से वह स्तुति आपमें बनती नहीं है, फिर भी आप पवित्र कीर्ति, वाणी अथवा ख्याति के धारक तथा गणधरादि मुनियों के स्वामी हैं। अतः आपका नाम–कीर्तन भी हमें पवित्र करता है, इसलिये हम कुछ कह रहे हैं।।87।।

हे नाथ! आप तीर्थंकर के साथ चक्रवर्ती भी थे। भरतक्षेत्र की षट्खण्ड भूमि में आपका विशाल साम्राज्य फैला हुआ था। चौदह रत्न और नौ निधियों से होनी वाली अटूट सम्पदा के साम्राज्य को जीर्ण त ण के समान त्यागते हुए आपको, उससे तनिक भी लगाव उत्पन्न नहीं हुआ था।।88।।

आपके शरीर की सुन्दरता को देखकर संतोष न प्राप्त करने वाली दो नेत्रों का धारक इन्द्र एक हजार नेत्रों से आपको एकटक निहारता देखता रहा।।89।।

हे नाथ ! कषाय रूपी सेना सहित मोहनीय जैसे बलिष्ठ कर्म रूपी प्रबल शत्रु को आपने रत्नत्रय धर्म द्वारा जीत लिया।।90।।

हे अरजिन! आपने तीनों लोकों के विजेता कामदेव को अपनी धीरता से जीत लिया, उसके मान को खण्डित कर दिया, आप अनंग हो।।91 ।।

भोगाकांक्षा बड़ी दुस्तर है। संसार के बहुसंख्यक प्राणी भोगाकांक्षा से उत्पन्न तृष्णा द्वारा कर्मों का बन्धकर नरक–निगोद में पहुँच जाते हैं। यदि इस तृष्णारूपी नदी को पार किया जा सकता है तो सम्यक्त्व मूलक ऐसे सम्यग्ज्ञान के द्वारा ही। भोगाकांक्षा कभी भी तृप्त नहीं होगी, निरन्तर बढ़ती ही रहती है, इसे सम्यक् विवेक रूपी नौका से ही पार किया जा सकता है।।92।।

वर्तमान आयु का अनेक निमित्त कारणों द्वारा क्षय होने से मृत्यु होती है। आपने इस काम तृष्णा, सांसारिक व्याधियों और समस्त कर्मों को नष्ट कर दिया, जीत लिया। जो काम मोह व तृष्णा को जय कर लेता है वही मोक्ष प्राप्त कर लेता है।।93।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भूषा-वेषाऽऽयुध-त्यागि विद्या-दम-दया-परम् ।
रूपमेव तवाचष्टे धीर! दोष-विनिग्रहम् ॥ 94 ॥

समन्ततोऽङ्ग-भासां ते परिवेषेण भूयसा ।
तमो बाह्यमपाकीर्णमध्यात्मं ध्यान-तेजसा ॥ 95 ॥

सर्वज्ञ-ज्योतिषोद्भूत तावको महिमोदयः ।
कं न कुर्यात् प्रणम्रं ते सत्त्वं नाथ ! सचेतनम् ॥ 96 ॥

तव वागमृतं श्रीमत् सर्वभाषा-स्वभावकम् ।
प्रीणयत्यमृतं यद्वत् प्राणिनो व्यापि संसदि ॥ 97 ॥

अनेकान्तात्म-दृष्टिस्ते सती शून्यो विपर्ययः ।
ततः सर्वं मृषोक्तं स्यात् तदयुक्तं स्व-घाततः ॥ 98 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

संसार के रागी–द्वेषी मानव अपने शरीर को श्रंगार से और भयातुर हो शस्त्रों–अस्त्रों से सजाते हैं। अपनी आत्मा असंख्य दोषों का पुंज है उसे नहीं सजाते। आप दिगम्बर जिनमुद्रा धारण कर, मूलगुणों को धारण कर इस शरीर से निःस्प ह हो गये और मुक्ति–लक्ष्मीपति हुए।।94।।

केवलज्ञान होते ही आपका शरीर परम औदारिक होकर प्रातिहार्य, भामण्डल आदि के अलौकिक तेज से व्याप्त हो जाता है। केवलज्ञान से पहिले आपने चार घातिया कर्मों का नाश कर दिया था, जिससे अंतरंग अन्धकार नष्ट होकर आत्मा लोकालोकावभासी केवलज्ञान के द्वारा जगमगा उठी।।95।।

भगवन! आपके समवसरण की विभूति अचिन्त्य है, अविकल्पनीय है। आपके केवलज्ञान में तीनों लोक के सब जीवों की भूत–भविष्य–वर्तमान काल की तीनों पर्यायें युगपत् अर्थात् एक साथ झलकती हैं। आपके समक्ष अहंकारियों का मान मर्दन हो जाता है।।96।।

भगवान् ! आपकी दिव्यध्वनि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का प्रतिपादन करती है। उस समवसरण के बारह कोठों में बैठकर देव, मानव व तिर्यंच अपनी–अपनी भाषा में ग्रहण करते हैं। आपके वचन· अमृ त–तुल्य हैं।।97।।

भगवन! आपने स्याद्वाद नय द्वारा अनेकान्त को पदार्थों का स्वरूप बताया जो सब को प्रिय हुआ। अन्यमातावलम्बियों ने एकान्त की हठ पकड़ी हुयी है, जो मिथ्या है। वे स्वयं अपने कथन को युक्तिसंगत सिद्ध नहीं कर पाते हैं। जो केवल वागाडंबर है। आपने अनेकान्त दृ ष्टि से पदार्थों का कथन किया है, इसलिये आपके वचन अमृ त के समान आह्लादकारी हैं।।98।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये पर-स्खलितोन्निद्राः स्व-दोषेभ-निमीलिनः ।
तपस्विनस्ते किं कुर्युरपात्रं त्वन्मतश्रियः ॥ 99 ॥
ते तं स्व-घातिनं दोषं शमीकर्तुमनीश्वराः ।
त्वद्‌द्विषः स्वहनो बाल तत्त्वाऽवक्तव्यतां श्रिताः ॥ 100 ॥
सदेक-नित्य-वक्तव्या तद्‌विपक्षाश्च ये नयाः ।
सर्वथेति प्रदुष्यन्ति, पुष्यन्ति स्यादितीह ते ॥ 101 ॥
सर्वथा-नियम-त्यागी यथादृष्टमपेक्षकः ।
स्याच्छब्दस्तावके न्याये नाऽन्येषामात्म-विद्विषाम् ॥ 102 ॥
अनेकान्तोऽप्यनेकान्तः प्रमाण-नय-साधनः ।
अनेकान्तः प्रमाणात् ते तदेकान्तोऽर्पितान्नयात् ॥ 103 ॥

इति निरुपम-युक्ति-शासनः,
प्रिय-हित-योगगुणाऽनुशासनः ।
अरजिन! दम-तीर्थ-नायकः
त्वमिव सतां प्रतिबोधनाय कः ॥ 104 ॥
मतिगुणः विभवाऽनुरूपतः
त्वयि वरदाऽऽगम-दृष्टिरूपतः ।
गुणकृशमपि किञ्चनोदितं,
मम भवताद् दुरिताऽसनोदितम् ॥ 105 ॥

इत्यर-जिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ये एकान्तवादी दूसरे के दोषों को कुरेदने में लगे रहते हैं। और अपने एकान्तवाद के द्वारा वस्तु के स्वरूप को बताने में अपने ही कुतर्कों में उलझ जाते हैं। क्या करें? इनमें न अपने स्वरूप के समर्थन की शक्ति है और न परपक्ष के निराकरण की।।99।।

हे भगवन्! ये एकान्तवादी पूर्वोक्त स्वघाती दोषों का शमन करने में असमर्थ हैं। वे असत्–सत्, नित्यत्व–अनित्यत्व गुण प्रत्येक चेतन अचेतन पदार्थों में पाये जाने वाले विरोधी धर्मों को (वस्तु के स्वभाव को) एक साथ नहीं जान सकते। अनेकान्त द ष्टि अवक्तव्यता व वक्तव्यता दोनों का उल्लेख करती है। एकान्त रूप से सर्वथा एक ही धर्म का उल्लेख करना दोष युक्त है।।100।।

'स्यात्' वक्ता के अभिप्राय को नय कहते हैं। वस्तु स्यात्सत् स्यात्असत् और यही वस्तु स्यात् वक्तव्य और स्यात् अवक्तव्य एक ही समय में अनेक गुण वाली होती है जो केवल अनेकान्त स्याद्वाद नय के द्वारा ही व्यक्त की जा सकती है, अन्यथा नहीं। यही सुनय है। और वस्तु के स्वरूप से एक धर्म को पकड़कर बैठने से नय कुनय बन जाती है। राम पिता भी है, पुत्र भी है, पति भी है, भाई भी है, चाचा, मामा भी है। राम को केवल पिता मानना कुनय है।।101।।

यह 'स्यात्' शब्द वस्तु के प्रामाणिक स्वरूप को बताने वाला है। अपने नियम न्याय में रहता है। एकान्तवादी स्वयं अपने ही वैरी हैं, यानी अपनी बात को स्वयं काटते हैं। ऐसा एकान्त आपके वचनों में नहीं है।।102।।

हे भगवन ! आपके मत में अनेकान्त प्रमाण है। नय से युक्त साधन वाला है। प्रमाण की अपेक्षा से अनेकान्त स्वरूप है, और वक्ता के कथन (विवक्षित नय) के अनुसार भी अनेकान्त स्वरूप है।।103।।

हे अर जिन ! सत् पुरुषों को, भव्य जनों को सम्बोधन करने में समस्त गुण आपके केवलज्ञान रूप हैं। उनको मोक्ष मार्ग पर लगाने वाला आपके अतिरिक्त और कौन हो सकता है? कोई नहीं ।।104।।

जो कार्य मनुष्य के पुरुषार्थ से सिद्ध न हो सके वह आप जैसे दिव्य पुरुष के वचन (वरदान) से सिद्ध होता है। हे भगवन्! आप विरद हैं। मैं अति अल्पज्ञानी आपके गुणों का लेशमात्र ही वर्णन कर सका हूँ। आप से यही चाहता हूँ कि मेरा यह भक्ति प्रयास पाप कर्मों का क्षय करने में समर्थ हो।।105।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(19) श्रीमल्लिजिनस्तवनम्

यस्य महर्षेः सकल-पदार्थ
प्रत्यवबोधः समजनि साक्षात् ।
साऽमर-मर्त्यं जगदपि सर्वं,
प्राञ्जलि भूत्वा-प्रणिपतति स्म ॥ 106 ॥

यस्य च मूर्तिः कनकमयीव,
स्वस्फुरदाऽऽभा-कृत-परिवेषा
वागपि तत्त्वं कथयितु-कामा,
स्यात्पद्-पूर्वा रमयति साधून् ॥ 107 ॥

यस्य पुरस्ताद विगलित-माना,
न प्रतितीर्थ्या भुवि विवदन्ते ।
भूरपि रम्या प्रतिपदमासी-
ज्जात-विकोशाऽम्बुज-मृदु-हासा ॥ 108 ॥

यस्य समन्ताज्जिन-शिशिरांशोः,
शिष्यक-साधु-ग्रह-विभवोऽभूत् ।
तीर्थमपि स्वं जनन-समुद्रः
त्रासित-सत्त्वोत्तरण-पथोऽग्रम् ॥ 109 ॥

यस्य च शुक्लं परम-तपोऽग्निः
ध्यानमनन्तं दुरितमधाक्षीत् ।
तं जिनसिंहं कृत-करणीयं,
मल्लिमशल्यं शरणमितोऽस्मि ॥ 110 ॥

इति श्रीमल्लिजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(19) श्री मल्लिजिनस्तवनम्

हे मल्लिनाथ भगवन्! आप इन्द्र गणधरादि के द्वारा पूज्य महान ऋषि थे। केवलज्ञान में लोकालोक के जानने वाले थे, केवल–ज्ञान होने पर समस्त देवों और मनुष्यों ने आपको हाथ जोड़कर प्रणाम किया था। मैं भी आज मल्लिनाथ जिनेन्द्र की शरण प्राप्त हुआ हूँ।।106।।

मल्लिनाथ भगवान का सोने जैसा शरीर अपनी आभा से भामण्डल की रचना करता था, और जिनकी वाणी 'स्यात्' पद से चिह्नित थी। इस तरह उनका शरीर व वाणी दोनों ही भव्य जीवों को अनुरक्त बना रहे थे, प्रसन्न कर रहे थे। मैं उन मल्लिनाथ भगवान की शरण को प्राप्त हुआ हूँ ।।107।।

स्यात् पद से सुशोभित मल्लिनाथ भगवान की वाणी इतनी निर्विवाद थी कि विरोधीजन उनके सामने विरोध करना भूल जाते थे, उनकी शरण में आने लगते थे। विहार के समय देवों के द्वारा कमलों की रचना ऐसी मनोहर जान पड़ती थी कि मानों पृथ्वी मन्द–मन्द हास से अपनी प्रसन्नता प्रगट कर रही हो। इसलिये मैं आपकी शरण को प्राप्त हुआ हूँ।।108।।

भगवान मल्लिनाथ! आपके वचन चन्द्रमा की शीतलता के समान प्रकाशक थे। तारागण की भांति शिष्य और साधुओं का विभव उनको घेरे रखता था। आप धर्मतीर्थ के प्रवर्तक थे। संसार–समुद्र से भयभीत प्राणियों को पार उतारने में अग्रणी थे। मैं आपकी शरण आया हूँ।।109।।

मल्लिनाथ भगवान ने चतुर्विध शुक्ल ध्यान रूपी अग्नि के द्वारा घातिया कर्मों को भस्मसात् किया था। आप को बालयति होने से जिनसिंह (जिनश्रेष्ठ) कहा गया है। आप संसारोच्छेद रूप कार्य कर चुके थे इसलिये कृतकृत्य थे। माया मिथ्या निदान शल्यों से दूर थे। मैं भी इन तीनों शल्यों को छोड़ कर मल्लिजिनेश की शरण को प्राप्त हुआ हूँ ।।110।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(20) श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनम्

अधिगत-मुनि-सुव्रत-स्थिति-
मुनि-वृषभो मुनिसुव्रतोऽनघः ।
मुनि-परिषदि निर्बभौ भवा-
नुडु-परिषत्परिवीत-सोमवत् ॥ 111 ॥

परिणत-शिखि-कण्ठ-रागया,
कृत-मद-निग्रह-विग्रहाऽऽभया ।
तव जिन! तपसः प्रसूतया,
ग्रह-परिवेष-रुचेव शोभितम् ॥ 112 ॥

शशि-रुचि-शुचि-शुक्ल-लोहितं,
सुरभितरं विरजो निजं वपुः ।
तव शिवमतिविस्मयं यते!
यदपि च वाङ्मनसीयमीहितम् ॥ 113 ॥

स्थिति-जनन-निरोध-लक्षणं,
चरमचरं च जगत् प्रतिक्षणम् ।
इति जिन ! सकलज्ञ-लाञ्छनं,
वचनमिदं वदतांवरस्य ते ॥ 114 ॥

दुरित-मल-कलंकमष्टकं,
निरुपम-योगबलेन निर्दहन् ।
अभवदभव-सौख्यवान् भवान्,
भवतु ममापि भवोपशान्तये ॥ 115 ॥

इति श्रीमुनिसुव्रतजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(20) श्रीमुनिसुव्रतनाथजिनस्तवनम्

जो मुनियों में श्रेष्ठ हैं, चारों घातिया कर्मों का नाश कर चुके हैं ऐसे "मुनिसुव्रत" नाम को सार्थक करने वाले हैं। आप समवसरण के बीच मुनियों की सभा में नक्षत्रों से घिरे हुए चन्द्रमा के समान सुशोभित थे।।111।।

कामविकार और सभी तरह के अहंकार आदि का भी नाश कर मुनि–सुव्रतनाथ भगवान तपश्चरण में लीन थे। उनका शरीर तरुण मयूर के कण्ठ के समान नील वर्ण था, जो तृष्णा के निमित्त से अधिक प्रभापूर्ण हो गया था, जिसकी दीप्ति चन्द्रमा के परिमण्डल की दीप्ति के समान चारों ओर फैल रही थी।।112।।

हे मुनिराज! चन्द्रमा की धवल किरणों के समान धवल रक्त युक्त आपका शरीर सबको शुभ और आश्चर्य में डालने वाला था। वैसे ही आपके मन एवं वचन की प्रवृत्ति भी थी। केवलज्ञान होने पर आप राग–द्वेष से दूर हो गये हैं, जबकि संसारी पुरुष राग–द्वेष से दूषित रहते हैं।।113।।

हे भगवन्! आपने देखा है कि चेतन और अचेतन पदार्थों में प्रतिक्षण उत्पाद–व्यय और ध्रौव्य हो रहा है। माने पर्याय की अपेक्षा इसमें नवीन पर्याय उत्पन्न होती है और पूर्व पर्याय नष्ट होती है। द्रव्य की अपेक्षा सामान्य अंश दोनों में विद्यमान रहता है। यह सब साक्षात अनुभव में आ रहा है। आपके ये वचन सूचित करते हैं कि आप सर्वज्ञ हो।।114।।

हे भगवन्! आपने अनुपम शुक्ल ध्यान के बल से आठों कर्मों को जलाते हुए मोक्ष के अतीन्द्रिय सुख को प्राप्त किया, ऐसे आप मुझ समन्तभद्र के भी संसार की उपशान्ति के लिये होवे।।115।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(21) श्रीनमिजिनस्तवनम्

स्तुतिः स्तोतुः साधोः कुशल-परिणामाय स तदा,
भवेन्मा वा स्तुत्यः फलमपि ततस्तस्य च सतः ।
किमेवं स्वाधीन्याज्जगति सुलभे श्रायस-पथे,
स्तुयान्न त्वां विद्वान् सततमभिपूज्यं नमिजिनम् ॥ 116 ॥

त्वया धीमन्! ब्रह्म-प्रणिधिमनसा जन्म-निगलं,
समूलं निर्भिन्नं त्वमसि विदुषां मोक्षपदवी ।
त्वयि ज्ञानज्योति-र्विभव-किरणैर्भाति भगव-
न्नभूवन् खद्योता इव शुचिरवावन्यमतयः ॥ 117 ॥

विधेयं वार्यं चानुभयमुभयं मिश्रमपि तद्,
विशेषैः प्रत्येकं नियमविषयैश्चाऽपरिमितैः ।
सदाऽन्योऽन्यापेक्षैः सकल-भुवन-ज्येष्ठगुरुणा,
त्वया गीतं तत्त्वं बहुनय विवक्षेतर-वशात् ॥ 118 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(21) श्रीनमिजिनस्तवनम्

यह निश्चित है कि स्तुति स्तुति करने वाले के पुण्य परिणाम को उत्पन्न करने का कारण होगी। स्तुति से स्तोता के पुण्य बन्ध में सहायक प्रशस्त परिणाम अवश्य होते हैं। इस तरह संसार से कल्याण का मार्ग स्तोता के आधीन है, स्तुत्य के नहीं। व्यक्ति अपने आराध्य देव की स्तुति करने में स्वतन्त्र है। फिर यह कल्याण मार्ग सुलभ, आसान है, कोई कष्टकारक भी नहीं है। इन्द्रों ने नमिजिन की अगाध स्तुति की थी। मैं भी अपने कल्याण के लिये अपने भावों को निर्मल करता हूँ, क्योंकि मेरा कल्याण मेरे अपने निर्मल भावों (परिणामों) के आधीन है। उन निर्मल भावों के बिना मेरा आराध्य भी मेरा कुछ हित नहीं कर सकता। इस तरह मेरे कल्याण का मार्ग स्वयं मेरे आधीन है, नमिजिन के सद्भाव या असद्भाव के आधीन नहीं जब यह बात है तो इन्द्रों द्वारा स्तुत्य जिनेन्द्र की मैं स्तुति क्यों नहीं करूँ?।।116।।

आपने केवलज्ञान ज्योति की किरणों से आत्मस्वरूप में लीन होकर संसाररूपी बन्धन को जड़ से काट दिया। आपसे विवेकी जनों को मोक्षमार्ग प्रशस्त हुआ। अन्यमतावलम्बी उनके केवलज्ञानी न होने से ठीक उसी तरह हतप्रभ हो जाते हैं, जैसे कि दोपहर के सूर्य के आगे जुगनू।।117।।

संसार के प्रत्येक पदार्थ में अस्तित्व, नास्तित्व, अभूतपूर्व, स्थूलत्व, सूक्ष्मत्व, एकत्व, अनेकत्व आदि अनन्त धर्म पाये जाते हैं। कथन करते समय प्रत्येक धर्म के सात ही भंग होते हैं, न कम न ज्यादा। मूल में तो अस्ति, नास्ति, अवक्तव्य तीन हैं, जिनके आपस के मेल से सात बन जाते हैं। यथा–

1. स्वचतुष्टय की अपेक्षा अस्तित्व है।
2. परचतुष्टय की अपेक्षा नास्तित्व है।
3. स्वचतुष्टय और परचतुष्टय की क्रम से अपेक्षा करने पर अस्तित्व–नास्तित्व है।
4. स्वचतुष्टय और परचतुष्टय दोनों की एक साथ अपेक्षा से वस्तु का कथन नहीं हो सकता इसलिये अवक्तव्य है।
5. अस्तित्व के साथ अवक्तव्य का सम्बन्ध करने पर अस्ति अवक्तव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं,
न सा तत्राऽऽरम्भोऽस्त्यणुरपि च यत्राऽऽश्रमविधौ ।
ततस्तत्सिद्ध्यर्थं परम-करुणो ग्रन्थमुभयं,
भवानेवाऽत्याक्षीन्न च विकृत-वेषोपधि-रतः ॥ 119 ॥

वपुर्भूषा-वेष-व्यवधिरहितं शान्तकरणं,
यतस्ते संचष्टे स्मर-शर-विषाऽऽतंक-विजयम् ।
विना भीमैः शस्त्रैरदय-हृदयाऽऽमर्ष-विलयं,
ततस्त्वं निर्मोहः शरणमसि नः शान्तिनिलयः ॥ 120 ॥

इति श्रीनमिजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

6. नास्तित्व के साथ अवक्तव्य का सम्बन्ध करने पर नास्ति अवक्तव्य है।

7. आस्ति–नास्ति दोनों के साथ अवक्तव्य का सम्बन्ध होने पर आस्ति–नास्ति अवक्तव्य है।

इस तरह अस्तित्व धर्म से सारे ही भंग हो सकते हैं। पदार्थों में पाये जाने वाले ये धर्म एक दूसरे की अपेक्षा रखते हैं। वक्ता जिस समय जिस धर्म को जिस नय से कहने की इच्छा रखता है उस समय वह धर्म, वह नय मुख्य हो जाती है और बाकी छहों गौण हो जाते हैं।

हे नमिजिन! आप जगत में श्रेष्ठतम गुरु हो, इसलिये आपने वस्तु स्वरूप का कथन इन सात नयों द्वारा किया है।।118।।

संसार के अनेक मतावलम्बी लोग अपनी बुद्धि के अनुसार भिन्न–भिन्न अनेक आश्रमों की स्थापना कर अनेक हिंसक पापमय वेष धारते हैं। जैसे पंचाग्नि तपना, जटाधारी होना, नदी में नहाना, कन्दमूल भक्षण आदि आदि; परिग्रह त्याग का नियम लेकर अनेकों प्रकार के परिग्रह रखते हैं। जैसे म गछाला, मयूर मुकुट, भस्मलपेटना दण्ड, त्रिशूल, पीताम्बर, कंठाभरण आदि। सब हिंसा के उपकरण हैं। इनसे कभी भी मुक्ति नहीं हो सकती। आपने अंतरंग और बहिरंग दोनों परिग्रहों को त्यागा, नग्न दिगम्बर मुद्रा को दूषित करने वाले वेष और परिग्रह को पास भी नहीं फटकने दिया। अन्य देवी देवता इस आदर्श को नहीं पा सके; इसीलिये आपको ही मेरा नमस्कार है।।119।।

हे नमिजिन! संसार के मनुष्य अपनी काम तृ ष्णा को छिपाने के लिये वस्त्रभूषण धारण करते हैं। वे क्रोध के वशीभूत हो भयंकर अस्त्र–शस्त्र अपने पास रखते हैं। आप नग्न दिगम्बर मुद्रा को धारण कर अष्ट कर्मों को नाश कर निर्मोही हुए। आपको नमस्कार है।।120।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(22) भगवदरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

भगवानृषिः परम-योग,
दहन-हुत-कल्मषेन्धनः ।
ज्ञान-विपुल-किरणैः सकलं,
प्रतिबुद्ध्य बुद्ध-कमलायतेक्षणः ॥ 121 ॥

हरिवंश-केतुरनवद्य-
विनय-दम-तीर्थ-नायकः ।
शील-जलधिरभवो विभव
त्वमरिष्ट-नेमि-जिन-कुञ्जरोऽजरः ॥ 122 ॥

त्रिदशेन्द्र-मौलि-मणि-रत्न-
किरण-विसरोपचुम्बितम् ।
पाद-युगलममलं भवतो,
विकसत्कुशेशय-दलारुणोदरम् ॥ 123 ॥

नख-चन्द्र-रश्मि-कवचाति
रुचिर-शिखराङ्गुलि-स्थलम् ।
स्वार्थ-नियत-मनसः सुधियः,
प्रणमन्ति मन्त्र-मुखरा महर्षयः ॥ 124 ॥

द्युतिमद्रथांग-रवि-बिम्ब
किरण-जटिलांशु-मण्डलः ।
नील-जलद-जलराशि-वपुः,
सह बन्धुभिर्गरुडकेतुरीश्वरः ॥ 125 ॥

हलभृच्च ते स्वजनभक्ति
मुदित-हृदयौ जनेश्वरौ ।
धर्म-विनय-रसिकौ सुतरां,
चरणारविन्द-युगलं प्रणेमतुः ॥ 126 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(22) श्री अरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

हे भगवन्! आपके नेत्र खिले हुए विशाल कमल के समान थे, सदा युवा शरीर था, वार्धक्य जनित विकार रहित था। आप हरिवंश कुल के तिलक थे। हरि–कृष्ण नारायण वंश के शिरोमणि थे। आप अष्टकर्मों का नाश कर केवलज्ञानी हुए थे। अष्टप्रातिहार्य रूप उत्कृष्ट ऐश्वर्य से युक्त थे। शील के सागर थे। विवाह से पूर्व आपने राजुलमति का परित्याग कर बाल ब्रह्मचर्य पाला और इन सब विशेषताओं के कारण संसार से मुक्त हुये थे।।121–122।।

हे भगवन्! गणधर देव व अतिशय बुद्धिमान महर्षि मन्त्रपाठ व स्तुति करते हुये आपके चरणयुगल को नमस्कार करते रहते हैं। आपका वह चरण–युगल अत्यन्त निर्मल है, आपके चरणों की अंगुलियों के नखों से किरण फूट रही हैं।।123–124।।

भगवान अरिष्टनेमि के पिता समुद्रविजय दस भाई थे। समुद्रविजय सबसे बड़े थे और वासुदेव सबसे छोटे भाई थे। श्रीकृष्ण की ध्वजा में गरुड़ का चिहन् था। वे श्याम वर्ण थे, उन्हें सूर्य के समान सुदर्शन चक्र–रत्न प्राप्त था। वे संसार के स्वामी थे। बलराम बलभद्र भाई हलधर थे। अरिष्टनेमि उनके बड़े दादा के पुत्र होने से भाई थे। तीर्थंकर के रूप में अपने भाई की प्रतिष्ठा देख वे बड़े प्रसन्न थे। वे दोनों भाई अपने अपने अन्य भाइयों के साथ भगवान अरिष्टनेमि के चरण–युगल को बार–बार प्रणाम करते थे।।125–126।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ककुदं भुवः खचरयोषि-
दुषित-शिखरैरलङ्कृतः ।
मेघ-पटल-परिवीत-तट
तव लक्षणानि लिखितानि वज्रिणा ॥ 127 ॥

वहतीति तीर्थमृषिभिश्च,
सततमभिगम्यतेऽद्य च ।
प्रीति-वितत-हृदयैः परितो,
भृशमूर्जयन्त इति विश्रुतोऽचलः ॥ 128 ॥

बहिरन्तरप्युभयथा च,
करणमविघाति नार्थकृत् ।
नाथ! युगपदखिलं च सदा,
त्वमिदं तलाऽमलकवद् विवेदिथ ॥ 129 ॥

अत एव ते बुधनुतस्य,
चरित-गुणमद्भुतोदयं ।
न्याय-विहितमवधार्य जिने,
त्वयि सुप्रसन्न-मनसः स्थिता वयम् ॥ 130 ॥

इत्यरिष्टनेमिजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सौराष्ट्र देश में ऊर्जयन्त पर्वत अन्य नाम "रैवतक गिरि" व प्रचलित भाषा में 'गिरनार" कहते हैं, बहुत ऊँचा है मानों प थ्वी का कान्धा हो। वहाँ विधाधरों की स्त्रियाँ सदा कल्लोल करती रहती हैं। उसके शिखर बादलों से घिरे रहते हैं अर्थात् बादल छाये रहते हैं। इन्द्र ने उस पर्वत पर भगवान अरिष्टनेमि के चिन्हों को वज्र से उकेरा था। इसलिये गिरनार लोक में तीर्थ माना जाता है, और भी आत्म–कल्याण के इच्छुक गिरनार की वंदना करते हैं। जब इस पर्वत पर अरिष्टनेमि का समवसरण आया तो उस समवसरण के वैभव को देखकर बलराम, कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए और भगवान के चरणों में बार–बार प्रणाम करने लगे।।127–128।।

भगवन्! समस्त चराचर हाथ की रेखा के समान आपके केवलज्ञान में झलकता है। यह ज्ञान अतीन्द्रिय है। यह बाह्य व अन्तरंग दोनों प्रकृतियों को इन्द्रियों की सहायता के बिना तीनों लोक तीनों काल (भूत–भविष्य–वर्तमान) की पर्यायों को एक साथ (युगपत्) जानता है। आपकी इस विशेषता से आकृष्ट होकर समस्त विद्वान आपकी स्तुति करते हैं। हम भी यह सर्व निश्चय करके आपकी शरण में आये हैं।।129–130।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(23) श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्

तमाल-नीलैः सधनु तडिद्गुणैः,
प्रकीर्ण-भीमाऽशनि-वायु-वृष्टिभिः ।
बलाहकैर्वैरि-वशैरुपद्रुतो,
महामना यो न चचाल योगतः ॥ 131 ॥

बृहत्फणा-मण्डल-मण्डपेन यं,
स्फुरत्तडित्पिंग-रुचोपसर्गिणम् ।
जुगूह नागो धरणो धरा-धरं,
विराग-सन्ध्या-तडिदंम्बुदो यथा ॥ 132 ॥

स्व-योग-निस्त्रिंश-निशात-धारया,
निशात्य यो दुर्जय-मोह-विद्विषम् ।
अवापदाऽऽर्हन्त्यमचिन्त्यमद्भुतं,
त्रिलोक-पूजाऽतिशयाऽऽस्पदं पदम् ॥ 133 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(23) श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्

भगवान पार्श्वनाथ अहिक्षेत्र नामक धरा पर ध्यानारूढ़ थे। पूर्व भव का वैरी कमठ अब जो कालसंवर नाम का ज्योतिषक देव हुआ था, वहाँ से निकला। भगवान को देख कर उसे पूर्वभव का वैर याद आ गया। उसने घनघोर उपद्रव किये, उपसर्ग किये। क्या–क्या नहीं किया? वज्रपात, उल्कापात, ओले, पत्थर, मूसल वर्षा की धारें, पिशाचों का नरमुंड, मालाओं का अग्नि बरसाना आदि आदि। परंतु वे भगवान अपने शुक्ल ध्यान रूपी योग में स्थित तनिक भी विचलित नहीं हुये।।131।।

कालसंवर नाम के देव ने भगवान पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किया जानकर धरणेन्द्र ने स्वर्ग से आकर विक्रिया से सर्प का रूप बना, विशाल फण द्वारा भगवान को छाया कर दी और उपसर्ग निष्फल कर दिया। भगवान को वेष्टित करता हुआ धरणेन्द्र ऐसा जान पड़ता था मानों सन्ध्या के समय बिजली से युक्त मेघों ने पर्वत को ढंक रखा हो।।132।।

उधर कालसंवर भगवान पर उपसर्ग कर रहा था, इधर भगवान पार्श्वनाथ शुक्ल ध्यान में निमग्न क्षपक श्रेणी पर आरुढ़ हो रहे थे। उन्होंने अन्तर्मुहूर्त में वह अचिन्त्य पद प्राप्त कर लिया जिसकी हम अल्पज्ञ कल्पना भी नहीं कर सकते। समवसरण की रचना विभूति के कारण आश्चर्य उत्पन्न हो रहा था। शत इन्द्र उनकी पूजा करते थे।।133।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यमीश्वरं वीक्ष्य विधूत-कल्मषं,
तपोधनास्तेऽपि तथा बुभूषवः ।
वनौकसः स्व-श्रम-वन्ध्य-बुद्धयः,
शमोपदेशं शरणं प्रपेदिरे ॥ 134 ॥

स सत्यविद्यातपसां प्रणायकः,
समग्रधीरुग्रकुलाम्बरांशुमान् ।
मया सदा पार्श्वजिनः प्रणम्यते,
विलीन-मिथ्या-पथ-दृष्टि-विभ्रमः ॥ 135 ॥

इति श्रीपार्श्वजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे पार्श्वजिनेन्द्र! अरिष्टनेमि को चौरासी हजार वर्षों का लम्बा अन्तराल बीत चुका था, तब आपका अवतार हुआ; इस बीच अन्यमतावलम्बियों का मिथ्या मार्ग भारतवर्ष में खूब जोरों पर था। वे तरह–तरह के तप करते थे। वर्षों बीतने पर भी उनको कुछ भी फल की प्राप्ति नहीं हुयी। इधर भगवान पार्श्वनाथ केवल चार माह की तपश्चर्या के द्वारा चार घातिया कर्मों का नाश कर ईश्वर बन गये थे, उनके समवसरण की रचना हो चुकी थी तथा समस्त देव, दानव उनके प्रभाव से नतमस्तक हो गये थे। भगवान् की तपस्या और विभूति को देखकर मिथ्यामार्गी साक्षात् चमत्कार देख और अपना प्रयास निष्फल सिद्ध हुआ जान भगवान पार्श्वनाथ की शरण में आ गये थे।।134।।

भगवान्! पार्श्वनाथ उग्रवंश में उत्पन्न हुये थे। उन्होंने संसार को आकाश में चन्द्रमा के समान धर्म से प्रकाशित किया। चूँकि पार्श्वनाथ पूर्ण ज्ञानी थे, सर्वज्ञ थे। उन्होंने अपने उपदेश द्वारा उन मिथ्यादृष्टियों को सम्यग्दृष्टि बनाया वे सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र रूप मोक्षमार्ग के प्रणेता थे। मैं भी मोक्ष का इच्छुक हूँ, इसीलिये मोक्षमार्ग के प्रकृष्ट नायक भगवान पार्श्वनाथ को प्रणाम करता हूँ।।135।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(24) श्रीवीरजिनस्तवनम्

कीर्त्या भुवि भासि तया,
वीर! त्वं गुणसमुच्छ्रया भासितया ।
भासोडु-सभाऽऽसितया,
सोम इव व्योम्नि कुन्द-शोभा-सितया ॥ 136 ॥

तव जिन! शासन-विभवो,
जयति कलावपि गुणानुशासन-विभवः ।
दोषकशासन-विभवः,
स्तुवन्ति चैनं प्रभाकृशासन-विभवः ॥ 137 ॥

अनवद्यः स्याद्वादस्तव,
दृष्टेष्टाऽविरोधतः स्याद्वादः ।
इतरो न स्याद्वादो,
स द्वितय-विरोधान् मुनीश्वराऽस्याद्वादः ॥ 138 ॥

त्वमसि सुराऽसुर-महितो,
ग्रन्थिक-सत्त्वाऽऽशय-प्रणामामहितः ।
लोकत्रय-परम-हितो-
ऽनावरणज्योतिरुज्ज्वलद्धाम-हितः ॥ 139 ॥

सभ्यानामभिरुचितं,
दधासि गुण-भूषणं श्रिया चारु-चितम् ।
मग्नं स्वस्यां तं रुचितं
जयसि च मृगलाञ्छनं स्व-कान्त्या रुचितम् ॥ 140 ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(24) श्रीमहावीरजिनस्वतनम्

भगवान महावीर आत्मीय सम्पत्ति को देने वाले थे इसीलिये वीर कहलाते थे। उनकी आत्मा सम्यग्दर्शनादि गुणों से और शरीर सातिशयरूपता आदि गुणों से युक्त था। उनके गुणों की कीर्ति सब जगह फैल रही थी जैसें कुन्द पुष्प की शोभा के समान आकाश में चन्द्रमा सुशोभित होता है।।136।।

आपका शासन पूर्वकाल में भी जयवन्त था और कलिकाल में भी जब वक्र परिणामियों की बहुलता है वह जयवन्त हो रहा है। गणधरादि देव आपकी निरन्तर स्तुति करते हुये त प्त नहीं होते। आपने अपनी ज्ञान प्रभा से हरिहरादि लौकिक देवों को महत्त्वहीन बना दिया था।।137।।

गणधरादि मुनियों के स्वामी वीर जिनेन्द्र! आपने स्याद्वाद अनेकान्तरूप उपदेश दिया है। स्यात् शब्द प्रत्यक्ष व परोक्ष प्रमाणों वाला है, निर्दोष है और अन्यमतावलम्बी एकान्त–दोष से युक्त हैं।।138।।

मिथ्याद ष्टियों को छोड़ अन्य सब आपकी पूजा करते हैं। आप त्रिलोकवर्ती जीवों के परमहितैषी हैं। केवलज्ञान रूप निरावरण ज्योति से प्रकाशमान मोक्ष को प्राप्त हैं।।139।।

हे वीर जिनेन्द्र! आप सर्वज्ञ हैं। वीतराग गुणों को धारण करते हैं। समवसरण सभा में भव्यों को रुचिकर हैं। अष्टप्रातिहार्य रूप लक्ष्मी से व्याप्त हैं। आपके शरीर की दीप्ति चन्द्रमा की दीप्ति–कान्ति को भी जीतती है। आप अतिशय सुन्दर और मनभावन हैं।।140।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

त्वं जिन! गत-मद-माय
तव भावानां मुमुक्षु कामदं-मायः ।
श्रेयान् श्री-मद-माय
त्वया समादेशि सप्रयास-दमाऽऽय: ॥ 141 ॥

गिरिभित्त्यऽवदानवतः,
श्रीमत इव दन्तिनः स्त्रवद्दानवतः ।
तव शमवादानवतो,
गतमूर्जितमपगतप्रमा-दान-वतः ॥ 142 ॥

बहु-गुण-सम्पदऽसकलं,
परमतमपि मधुर-वचन-विन्यास-कलम् ।
नयभक्त्यवतंसकलं,
तव देव! मतं समन्तभद्रं सकलम् ॥ 143 ॥

इति श्रीवीरजिनस्तवनम्

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे वीर जिनेन्द्र! आप मद, माया व कषायों को नष्ट कर चुके हैं। मोक्षाभिलाषी आपकी शरण में आते हैं। आपने उनको हितोपदेश द्वारा मोक्ष प्रदान करा कर उनके मनोरथों को पूर्ण किया। आपने भव्यजीवों को इन्द्रिय दमन और कषाय शमन का उत्तम उपदेश दिया।।141।।

यहाँ हाथी का दृ ष्टांत देते हुये वीर प्रभु के विहार का वर्णन किया गया है। जैसे – हाथी गमन की रुकावटों को दूर कर देता है – आप मिथ्याद ष्टियों को अनेकान्त मत द्वारा पराजित कर आगे बढ़ते हैं।

2. झरते हुए मद से युक्त होता है, आप भी ज्ञानदान प्रवाहित करते थे।

3. हाथी अपने महावत की रक्षा करता है – आप भी राग–द्वेषों को दूर करने वाले शास्त्रों की रक्षा करते हो।

4. हाथी प्रमाद रहित मनुष्यों की रक्षा करता है, आपके विहार काल एवं समवसरण में प्राणी जाति–विरोधी हिंसा भी छोड़ देते हैं। आप सबको अभय दान देते हैं।

5. आपका विहार भी किसी की प्रेरणा से नहीं होता है और न किसी के रोकने पर रुकता है।

भगवन्! अन्य एकान्तवादियों का शासन मीठी–मीठी भाषा से भरपूर और कानों को लुभाने वाला होता है, तथापि सच्चे शासन योग्य जो यथार्थता व परहितकारिता गुण होने चाहिये उनका उनमें अभाव है।।142।।

सप्त–भंगीरूप मनोज्ञ नयों से युक्त परस्पर विरोधी धर्मों का प्रतिपादन होने से आपका शासन सफल है। कल्याण करने वाला है। ग्रन्थकर्ता आचार्य समन्तभद्र ने इस पद में अपने नाम की सूचना दी है।।143।।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीसमन्तभद्रभारती-स्तुति

(हिन्दी अनुवाद)

देवेंद्र, नागेंद्र व नरेंद्रों द्वारा जिसकी स्तुति की जाती है, आचार्यश्री समन्तभद्र के वचनों से जो प्रकट हुई है, आत्मानुभूतिगम्य है और अद्वितीय है, उस भारती (सरस्वती) का मैं बारंबार नामोच्चरण, नमन, पठन, व्याख्यान, स्मरण एवं स्तवन करता हूँ।

जो प्रमाता, प्रमाण व प्रमेय की सिद्धि के माध्यम से वस्तु मात्र को विषय (निरूपित) करती है, सात भंगों व सात नयों के द्वारा समस्त तत्वों का विवेचन करती है, मोक्ष व बन्ध तथा धर्मी व धर्म इनके स्वरूप को स्पष्ट करती है और जो आप्त (सर्वज्ञ) के तत्त्व (स्वरूप) को व्याख्यायित (प्रकाशित) करती है, उस श्रीसमन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

सूरियों (मनीषी साधुओं, आचार्यों) ने प्रशस्त वचनों से जिसकी वन्दना की है, जो जीवन के परम उपादेय तत्त्व का कथन करती है, जो प्रशस्त कीर्ति के कारण उज्जवल प्रभायुक्त है, जो उपाय (मोक्ष मार्ग) के तत्त्व (स्वरूप) को पूर्णता प्रदान करती है, पूर्वपक्ष के निराकरण हेतु प्रयुक्त प्रचण्ड वाणी ही जिसका विलास (मनोविनोद) है, और जो समस्त जगत की हितकारिणी है, उस श्रीसमन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आचार्य गृद्धपिच्छ–कथित प्रकृष्ट मंगलमय (निष्पाप, निष्कलंक) अर्थ को जो अपने में समाहित किये हुए हैं, जिसके प्रसाद से आचार्य पात्रकेसरी ने उत्कृष्ट प्रभाव व प्रतिष्ठा प्राप्त की है, भाष्यकार (आचार्य विद्यानन्द) द्वारा जो पोषित–वर्द्धित हुई है एवं अन्यान्य अनेक मुनीश्वरों ने जिसे अलंकृत–सजाया संवारा है, सिद्धि व सुख की साधिका उस श्री समन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

जो इन्द्रभूति गणधर द्वारा कथित (व्याख्यायित) प्रमेय वस्तुओं के समूह का साक्षात्कार करती (व कराती) है, जो तीर्थंकर वर्धमान महावीर स्वामी के ज्ञान में प्रतिभासित परम चैतन्य तत्त्व में रमण करती है, जो योग (न्याय–वैशेषिक), बौद्ध आदि दार्शनिक रूपी पर्वतों को छिन्न–भिन्न करने में वज्र के समान घातक सिद्ध होती है, क्षीरसागर की तरह (शुभ्रवर्णा) उस श्री समन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

जो प्रमाण व नय–गर्भित वचनों से सिद्ध की जाने वाली वस्तु और उसके धर्मों को साक्षात्कार करने (या कराने) वाली है, सिद्धों द्वारा प्राप्त की जानेवाली परम शुद्धता (वीतरागता) की प्राप्ति में साधनभूत है, जो घोर व दुःखबहुल इस संसार–सागर को पार कराने में सक्षम है, उस श्री समन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

जो 'मध्यमा' वाणी के रूप में व्यवहारयोग्य समस्त वस्तुओं की अभिव्यक्ति की प्रवर्तिका है और स्वयं की अभिव्यक्ति की प्रवर्तिका है और स्वयं में अनन्त पदार्थ (सूक्ष्म अव्यक्त रूप में) समाहित किये हुए हैं, जो शून्य (आयोग–दशा) तथा सर्वज्ञता की भूमिका की प्राप्ति में साधक है और जो हेतु–प्रयोग व शास्त्रार्थ (वाद) द्वारा सिद्ध किये जाने वाले प्रमेय पदार्थों के समूह को अभिव्यक्त करती है उस श्री समन्तभद्र–भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहार मोक्षमार्ग व निश्चय मोक्षमार्ग, व्यवहार व निश्चय नय की दृष्टियों से द्विविध जीवादि पदार्थ—इनका जो स्वरूप प्रकाशित करती है, जो पापनाशक वाङ्मय रूपी वाणी—विलास ही जिसके आभूषण व परिधान हैं, जो सभी (लौकिक व लोकोत्तर) सुखों की दायिका है और जो नागराज (आदि) द्वारा पूजित—सम्मानित हैं, उस श्री समन्तभद्र—भारती की मैं स्तुति करता हूँ।

(महाकवि पं. आशाधार सूरि द्वारा रचित)
हिन्दी अनुवाद समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वयम्भू - स्तोत्रम्

(चतुर्विंशतिजिनस्तोत्रम्)

स्वयम्भू-स्तोत्रम् (सरल हिन्दी अनुवाद सहित)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi